वार्षिक रु. ८० मूल्य रु. १०

विवेक-ज्योति

वर्ष ५३ अंक १ जनवरी २०१५

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जनवरी २०१५

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५३
अंक १

वार्षिक ८०/- **एक प्रति १०/-**

५ वर्षों के लिये – रु. ३७०/-
आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,४००/-
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ११०/- ; ५ वर्षों के लिये – रु. ५००/-

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल: vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

आदरणीय सम्पादक महोदय,

सादर प्रणाम।

मैं विवेक-ज्योति का वार्षिक ग्राहक हूँ। पत्रिका के बारे में अपनी राय देना चाहता हूँ। आवरण पृष्ठ पर स्वामी विवेकानन्द के अलग-अलग भाव-भंगिमा के चित्र देने की कृपा करें। विशेषकर वह चित्र जिसमें वे पूर्णतया ध्यानमग्न हों। इसके अलावा छोटा-सा प्रेरणाप्रद सम्पादकीय लेख भी लिखने की कृपा करें। श्रीश्री गुरुदेव रामकृष्ण देव के जीवन में घटित कोई विशेष प्रसंग भी दें, जिससे हमें प्रेरणा मिले। वैसे भी उनका पूरा जीवन ही एक प्रेरणा है, जो हमारे सामने है, पर बीज में ही वृक्ष छिपा है।

- गोपाल कृष्ण पण्ड्या, रानी पिपलिया, उज्जैन

सम्माननीय, पण्ड्या जी, आपका पत्र मिला। आपके सुझावों ने हमें आवरण पृष्ठ पर सोचने को विवश कर दिया। तभी मुझे स्वामी विवेकानन्द के एक विश्वस्तरीय दुर्लभ स्थान की स्मृति हो आयी, जिससे विवेक ज्योति के पाठक अब तक वंचित रहे हैं। मैं उसे ही छाप रहा हूँ। सम्पादकीय भी लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। शेष सुझाव भी कालक्रमानुसार सम्मिलित हो जायेंगे। ठीक समय पर ऐसे महत्त्वपूर्ण सुझाव हेतु धन्यवाद ! - सम्पादक

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में देखें : पृ. ३३

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी के दौरान भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोतर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५२ वर्षों से निरन्तर प्रज्ज्वलित रहकर यह 'ज्योति' भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाएँ पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। — **व्यवस्थापक**

आवश्यक सूचना

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष जनवरी, २०१५ में भी विवेकानन्द जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में विभिन्न प्रतियोगिताएँ होंगी और पं. रविशंकर विश्वविद्यालय में आश्रम और विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में १२ जनवरी को विभिन्न कॉलेजों के छात्र-छात्राओं द्वारा स्वामी विवेकानन्द जी को श्रद्धांजलि दी जायेगी। आश्रम परिसर में, मन्दिर में पूजा, होम और व्याख्यान होंगे । २६ जनवरी, २०१५ से ३ फरवरी तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती, राजेश रामायणी जी के रामचरित मानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे ।

वर्ष ५३ जनवरी २०१५ अंक १

श्रीविवेकानन्दध्यानम्

विश्वाचार्यं जगद्वन्द्यं विवेकानन्दरूपिणम् ।
वीरेश्वरात्समुत्पन्नं सप्तर्षिमण्डलागतम् ।।
ज्ञानभक्तिप्रदातारं पद्माक्षगौरविग्रहम् ।
ध्यायेद्देवं ज्योतिःपुञ्जं लोककल्याणकारिणम् ।।

– स्वामी विवेकानन्द विश्व के आचार्य हैं, जगत के वन्दनीय हैं, वीरेश्वर शिव से समुद्भूत हैं और सप्तर्षिमंडल से आए हुए हैं। वे ज्ञान और भक्ति को प्रदान करनेवाले हैं। उनके नेत्र कमल के समान हैं और शरीर गौर वर्ण का है। वे लोक का कल्याण करनेवाले हैं तथा ज्योति के पुंज हैं। ऐसे महान लोकनायक विश्ववन्द्य विवेकानन्द का मैं ध्यान करता हूँ, उनकी उपासना करता हूँ, उनकी पूजा-आराधना करता हूँ।

पुरखों की थाती

परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि ।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि ।।४३०।।

– अपने प्राणों तथा धन की भी परवाह न करते हुए परोपकार करना ही कर्तव्य है, (क्योंकि) सैकड़ों यज्ञों द्वारा भी उतना पुण्य नहीं होता, जितना कि परोपकार से होता है।

परोपकारः सच्चर्या ज्ञानं यत्र न भास्वरम् ।
वृथा वहति तज्जीवः शरीरं व्याधि-मन्दिरम् ।।४३१

– जिस व्यक्ति के जीवन में परोपकार, सदाचार या तेजोमय ज्ञान नहीं है, वह इस रोगमय शरीर को वृथा ही ढो रहा है।

परोपकार-कारिण्या परार्ति-परितप्तया ।
बुद्ध एव सुखी मन्ये स्वात्म-शीतलया धिया ।।४३२

– मैं तो उस ज्ञानी व्यक्ति को ही सुखी मानता हूँ, जो परोपकारी है, जो परदुःख से दुखी है और जिसकी बुद्धि अन्तरात्मा को शीतल करनेवाली है।

परोपकार-निरता ये स्वार्थ-सुख-निःस्पृहाः ।
जगद्धिताय जनिता साधवस्त्वीदृशा भुवि ।।४३३।।

– जो लोग परोपकार में तल्लीन रहते हैं, जिनमें अपने स्वार्थ तथा सुख की इच्छा नहीं होती और जिन्होंने जगत् के कल्याणार्थ जन्म लिया है, इस पृथ्वी पर ऐसे लोग ही साधु कहलाते हैं।

परोपकार-व्यापारो पुरुषो यः प्रजायते ।
सम्पदं स समाप्नोति परत्रापि परंपदम् ।।४३४।।

– जो व्यक्ति परोपकार के कार्य में लगा रहता है, उसे (जीवन में यश-रूपी) सम्पदा प्राप्त होती है और मरणोपरान्त परम पद की भी उपलब्धि होती है।

सम्पादकीय

स्वामी विवेकानन्द जी के स्वप्नों को युवक साकार करें

मानव-जीवन के पारखी महान मनोवैज्ञानिक स्वामी विवेकानन्द ने आज से लगभग १२० वर्ष पहले युवकों का आह्वान किया था। यद्यपि भारत की वर्तमान परिस्थितियाँ वैसी नहीं हैं। आज प्रत्येक क्षेत्र में भारत द्रुत गति से विकास कर रहा है। भारत के युवा विश्व के विभिन्न देशों में जाकर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, मेधा-शक्ति एवं दृढ़ मनोबल का परिचय देकर संसार को आश्चर्यचकित कर रहें है। १८९७ का अंग्रेजों द्वारा मर्दित, शोषित, प्रताड़ित, दरिद्र और पराधीन भारत, आज के विश्व के विकास सूची में आठवाँ स्थान प्राप्त कर एक स्वतन्त्र, दृढ़ इच्छाशक्ति सम्पन्न, किसी भी स्थिति में बाहर या भीतर के राष्ट्र-षडयंत्रकारियों को मुँहतोड़ जवाब देने में सक्षम, बाधारहित, सर्वसुख-सुविधासम्पन्न महाशक्तिशाली देश के रूप में जगत में अपना एक गौरवशाली सर्वोच्च स्थान बनाए हुए है और निरन्तर प्रगति कर रहा है। स्वामी विवेकानन्द ने जिस विकसित भारत का स्वप्न देखा था या कन्याकुमारी की शिला पर बैठकर जिस भविष्य के सर्वश्रेष्ठ भारत का दिव्य दर्शन किया था, उसका शुभारम्भ आज स्पष्ट दिख रहा है।

लक्ष्य अभी बाकी है

स्वामी विवेकानन्द के सपनों के भारत के निमार्ण का यह आरम्भ है, केवल श्रीगणेश ही है। लक्ष्य अभी भी दूर है। क्योंकि हम भौतिक सुविधाओं के अर्जन, विकास एवं भोग में पाश्चात्य देशों को टक्कर दे रहे हैं, किन्तु जिन मानवीय गुणों के विकास से इन सुविधाओं का सदुपयोग होता है, उसका हमारे जीवन में अभाव है, यहाँ तक कि नित्य ह्रास-सा प्रतीत हो रहा है। इस महान भारत देश में आज भी कुछ लोग उच्च शिक्षा की सुविधाओं, सुस्वास्थ्य और भोजन से वंचित हैं। युवक-युवतियाँ हताश होकर आत्महत्या कर रहे हैं। पारिवारिक कलह, मानवों में ईर्ष्या-द्वेष का विषाक्त वातावरण है। चोरी, घुसखोरी, भ्रष्टाचार, नागरिक असुरक्षा, आतंकवाद के तांडव से जन-मानस व्यथित, चिन्तित और असुरक्षित है। इसीलिए भौतिक संसाधनों की प्रचुरता होते हुए भी हम सच्ची सुख-शान्ति और परस्पर प्रेम से वंचित हैं, एक निष्छल स्नेहिल-दृष्टि प्राप्त करने को लालायित हैं। जब तक व्यक्ति में सद्गुणों का विकास कर उसे वास्तविक मानव के रूप में उन्नत नहीं किया जाता और उसके बाद मानवता से परे मनुष्य के दिव्य स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जाता, तब तक स्वामीजी के स्वप्नों का भारत नहीं होगा।

स्वामी विवेकानन्द का स्वप्न साकार कैसे होगा?

मानव-व्यक्तिव का निम्न से सर्वोच्च विकास

भारत के महान क्रान्तिकारी और महान योगी श्री अरविन्द जी ने मानव-जीवन को विविध दृष्टिकोणों से देखा है। वे अपने एक पत्र में लिखते हैं –"मनुष्य एक मनोमय सत्ता है, जो सजीव जड़त्व के अन्दर सशरीरी हुयी है। इस मनुष्य की समस्त चेतना को ऊपर उठाना होगा, जिसमें वह समस्त उच्चतर चेतना के साथ संयुक्त हो जाय। साथ ही उच्चतर चेतना का भी मन, प्राण और शरीर में उतर आना होगा। इस तरह बाधायें दूर हो जायेंगी और उच्चतर चेतना सम्पूर्ण निम्न प्रकृति को अपने हाथ में लेकर उसे अतिमानस की शक्ति में रूपान्तरित कर सकेंगी।' (श्री अरविन्द के पत्र, भाग –४ पृष्ठ, ४१-४२)

मनुष्य का स्वरूप उसके जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कारों के कारण दमित और आवृत्त है, उसको प्रकट करने तथा उसे सर्वोच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करने से ही जीवन की सार्थकता सिद्ध होगी।

स्वामी विवेकानन्द ने शरीर-मन-बुद्धि सबको मानव कल्याण में सदुपयोग करते हुए इन सबकी आत्मा में प्रतिष्ठित होने की बात कही है। हमारे देश के युवकों का व्यक्तित्व सर्वतोमुखी विकसित हो, ऐसी उनकी प्रबल इच्छा थी।

सर्वतोमुखी विकसित युवक कैसा हो?

हमारे देश के युवकों का शरीर सबल हो, उनका मनोबल ऊँचा हो, शक्तिशाली मन हो, उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति हो, उनकी बुद्धि निर्मल, प्रखर एवं सदा रचनात्मक कार्यों में संलग्न, दृढ़ निश्चयी हो। आत्मस्वरूप का ज्ञाता आत्मबोधमय हो। युवकों में निस्वार्थता, प्रेम, त्याग, दया और मानवीय संवेदना होनी चाहिए।

आदर्श युवक को कैसा होना चाहिये? इस सम्बन्ध में मुझे कहीं से एक पत्रक मिला, उसमें युवा-चरित्र के बड़े

महत्वपूर्ण बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है – "युवकों का मुखमण्डल तेजस्वी हो, शरीर में शक्ति हो, मन में उत्साह हो, सद्बुद्धि हो, विवेक हो, हृदय में करुणा हो, मातृभूमि के प्रति प्रेम हो, इन्द्रियों पर संयम हो, मन स्थिर हो, आत्मविश्वास दृढ़ हो, इच्छाशक्ति प्रबल हो, शूरवीर हो, सिंह के समान निर्भय हो, लक्ष्य जिसका ऊँचा हो, सत्य ही जिसका ईश्वर हो, सभी कुव्यसनों से मुक्त हो, जीवन में अनुशासन हो, मधुर प्रेममयी वाणी हो, सारे संसार को ही अपना कुटुम्ब समझता हो, गुरुजनों के प्रति आदर हो, अभिभावकों के प्रति श्रद्धा हो, गरीबों का मित्र हो, सेवा के लिये सदा तत्पर हो, देवताओं और भगवान के प्रति भक्ति-विश्वास हो, नैतिक जीवन हो और चरित्र शुद्ध हो।"

एक आदर्श युवक में ये सारे गुण अनिवार्य हैं। जब ऐसे तेजस्वी, ओजस्वी युवक होंगे, इस देश के नागरिक होंगे, तभी स्वामी विवेकानन्द का स्वप्न साकार होगा।

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी विरासत युवकों को सौंपा

आज से सौ वर्ष से भी अधिक पहले सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द जी ने भारत के युवकों के उज्ज्वल भविष्य को देखा था। उन्होंने अपने स्वप्नों के भारत के निर्माण में युवकों की भूमिका एवं उत्तरदायित्व का दर्शन किया था। आज हम देख भी रहे हैं कि विश्व में एकमात्र भारत सर्वाधिक युवाशक्ति का देश है। तभी तो स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन की विरासत और इस देश का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व युवकों को ही सौंपा था। वे लिखते हैं – "मैं बारह वर्ष तक हृदय में यह बोझ ढोते हुये और सिर में यह विचार लिये तथाकथित धनिकों के द्वार-द्वार पर घूमा। हृदय का रक्त बहाते हुये मैं आधी पृथ्वी का चक्कर लगाकर इस अजनबी देश (अमेरिका) में सहायता माँगने आया। परन्तु ईश्वर सर्वशक्तिमान हैं, मैं जानता हूँ, वे मेरी सहायता करेंगे। मैं इस देश में भूख या जाड़े से भले ही मर जाऊँ, पर हे युवको ! मैं गरीबों, अशिक्षितों और उत्पीड़ितों के लिये इस सहानुभूति तथा प्राणपण चेष्टा को तुम्हें थाती के रूप में सौंपता हूँ। जाओ, इसी क्षण उन पार्थ-सारथी श्रीकृष्ण के मन्दिर में जाओ, जो गोकुल के दीन-हीन ग्वालों के सखा थे, जो गुहक चाण्डाल को भी गले लगाने में नहीं हिचके, जिन्होंने अपने बुद्धावतार-काल में धनिकों का निमन्त्रण अस्वीकार कर एक गणिका के भोजन का निमन्त्रण स्वीकार किया और उसे उबारा। जाओ, उनके पास जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उन दीन-हीन और उत्पीड़ितों के लिये, जिनके लिये प्रभु युग-युग में अवतार लिया करते हैं और जिन्हें वे सबसे अधिक प्रेम करते हैं, उनके सम्मुख अपने सम्पूर्ण जीवन की महाबलि दो। प्रतिज्ञा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दोगे, जो दिनो-दिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं।" स्वामीजी दृढ़ विश्वास से कहते हैं, "मेरा विश्वास नयी पीढ़ी में है, मेरे कार्यकर्ता उन्हीं में से आयेंगे और सिंहों की भाँति सभी समस्याओं का समाधान निकालेंगे।"

स्वामी विवेकानन्द के इस विश्वास को भारतीय युवकों ने टूटने नहीं दिया, बल्कि उसे सँवारा है और आज इस देश को एक विकाशील राष्ट्र और स्वाभिमानी स्वावलम्बी राष्ट्र के रूप में विश्व के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया है। यहाँ तक कि अन्तरिक्ष में मंगल में पहुँचकर विकसित देशों के शिखर पर विद्यमान हैं। ऐसी युवाशक्ति वन्दनीय है, जिसका वरण स्वयं स्वामीजी ने अपने कार्यों के लिये किया और वे युवक वन्दनीय हैं, जो स्वामीजी के द्वारा सौंपे हुये विरासत की सुरक्षा एवं संवर्धन में अपने जीवन को समर्पित कर रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश अभी भी हमारे देश के बहुत से युवक जाग्रत नहीं है, इसलिये हम स्वामीजी के स्वप्नों को अल्पांश ही पूरा कर सके हैं, अधिकांश कार्य अभी भी शेष है।

देश के नव-निर्माण हेतु ऐसे चरित्रवान युवकों के निर्माण में अभिभावकों और शिक्षकों की महान भूमिका है। वे घर में अपने परिवार में, शिक्षा संस्थानों में, एक अच्छा शान्त स्नेहिल, प्रेममय अनुशासनयुक्त वातावरण तैयार करें, जिसमें हमारे बच्चों का सर्वांगीण विकास हो सके और वे भारतमाता के योग्य सपूत बन सकें, तथा विश्व की अमूल्य विरासत बन सकें।

प्रस्तुत लेख में जीवन के सर्वांगीण विकास में प्रमुख सहायक कुछ बिन्दुओं पर चिन्तन कर उसके सूक्ष्म गहन तत्त्वों की ओर भी सबकी दृष्टि आकर्षित करने का प्रयास किया गया है, जिसे समझकर सभी लोग अपनी क्षमतानुसार उसका अपने जीवन में आचरण कर सकें। भारत के कर्णधार युवावर्ग अपनी ऊर्जा को व्यर्थ अपव्यय न कर उसका सदुपयोग करके अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास कर सकें और स्वामी विवेकानन्द के महान गौरवशाली भारत के निर्माण में सहभागी बनकर अपने जीवन को धन्य बना सकें।

आइये! हम स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के निर्माण में अपने जीवन को अध्यास्त्र बनाकर पुन: भारत को विश्व के स्वर्ण-सिंहासन पर विराजित करने का प्राण-पण से प्रयत्न करें ! ○○○

जीवन का अन्तिम पर्व

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों, व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में कहीं-कहीं उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों का संकलन अँग्रेजी में 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक से और बँगला में 'आमि विवेकानन्द बोल्छी' नामक दो ग्रन्थ प्रकाशित हुये। दोनों ग्रन्थों के सहयोग एवं कुछ विशेष सामग्री के साथ वर्तमान संकलन 'विवेक-ज्योति' के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सम्पादक)

बेलूड़ मठ, १९०१ : कालीघाट में अभी भी कैसा उदार भाव देखा ! मुझे विलायत से लौटा हुआ 'विवेकानन्द' जानकर भी मन्दिर के अधिकारियों ने मन्दिर-प्रवेश में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की, बल्कि बड़े आदर के साथ मन्दिर के भीतर ले जाकर अपनी इच्छानुसार पूजा करने में सहायता की।[२०]

पहली विदेश-यात्रा से लौटकर जब मैं भारत आया था, तो अनेक सनातनी हिन्दुओं ने पाश्चात्यों के साथ मेरे सम्पर्क और कट्टरता के नियमों के भंग करने को सम्प्रदाय-विरोधी ठहरा कर खूब हो-हल्ला मचाया। मेरे द्वारा पाश्चात्य लोगों को वैदिक सत्यों की शिक्षा देना उन्हें अप्रिय लगा था।[२१]

बेलूड़ मठ, ५ जुलाई, १९०१ : मेरा स्वास्थ्य बड़ा खराब चल रहा है और अभी भी है। मैं केवल कुछ दिनों के लिए सँभल जाता हूँ, इसके बाद फिर ढह पड़ना मानो अनिवार्य हो जाता है। खैर, इस रोग की प्रकृति ही ऐसी है।

हाल ही में मैं पूर्वी बंगाल और आसाम में भ्रमण करता रहा हूँ। कश्मीर के बाद आसाम ही भारत का सबसे सुन्दर प्रदेश है, पर साथ ही बड़ा अस्वास्थ्यकर भी है। पर्वतों और गिरि-शृंखलाओं में चक्कर काटती हुई विशाल ब्रह्मपुत्र और उसके बीच-बीच में अनेक द्वीप, बस देखने ही लायक हैं ![२२]

बेलूड़ मठ, ६ अगस्त, १९०१ : सचमुच ही 'माँ जानती है'। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि 'माँ' न केवल जानती है, अपितु करती भी है और वह निकट भविष्य में मेरे लिये बहुत कुछ अच्छा करने जा रही है। तुम्हारे मतानुसार मेरे लिये इस पृथ्वी का सबसे अच्छा क्या हो सकता है? चाँदी? सोना? छी ! मैं ऐसा कुछ पा चुका हूँ, जो उनसे अनन्त गुना अच्छा है; परन्तु मेरे इस रत्न को समुचित परिवेश में रखने के लिये थोड़े-से स्वर्ण का भी अभाव नहीं रहेगा और वह आ रहा है, क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता?

मैं एक ऐसा आदमी हूँ, जो बहुत शिकायत करता है, परन्तु प्रतीक्षा भी करता है और आहार अपने आप ही मेरे मुख के पास चला आता है। इसलिये वह आ रहा है, आ रहा है, आ रहा है।[२३]

बेलूड़ मठ, २७ अगस्त, १९०१ : मैं चाहूँगा कि मेरा स्वास्थ्य तुम्हारी आशा के अनुरूप हो जाय। ... पर सच्चाई तो यह है कि वह दिन-प्रतिदिन गिरता ही जा रहा है। इसके अतिरिक्त भी अनेक परेशानियाँ और उलझनें साथ लगी हैं। मैंने तो अब उन पर ध्यान देना ही छोड़ दिया है। ... फिर मैं एक मरणोन्मुख व्यक्ति हूँ, मेरे पास छल करने के लिए समय नहीं है। ... एक तरह से मैं एक अवकाश-प्राप्त व्यक्ति हूँ। भावान्दोलन कैसा चल रहा है, मैं इसकी कोई बहुत जानकारी नहीं रखता। दूसरे, आन्दोलन का स्वरूप भी विस्तृत होता जा रहा है और एक आदमी के लिए उसके विषय में सूक्ष्मतम जानकारी रखना असम्भव है। खाने-पीने, सोने और बाकी समय शरीर की सेवा करने के सिवाय मैं और कुछ नहीं करता।[२४]

बेलूड़ मठ, २ सितम्बर, १९०१ : जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं बड़ा सुखी हूँ। वैसे बंगाल में मुझ पर बीच-बीच में दमा के दौरे आते रहते हैं, परन्तु वह नियंत्रण में आ रहा है और ब्राइट्स डिजीज तथा मधुमेह जैसी भयानक बीमारियाँ पूर्ण रूप से लुप्त हो गयी हैं। मेरा पूरा विश्वास है कि किसी शुष्क जलवायुवाली जगह में रहने पर दमा पूर्णत: चला जायेगा। दौरे के समय मुझमें दुर्बलता आ जाती है, परन्तु उसके बाद शीघ्र ही चर्बी की कई तहें जम जाती हैं। मेरे पास बहुत-सी गायें, बकरियाँ, कुछ भेड़ें, कुत्ते, हंस, बतख तथा एक पालतू हिरण हैं और शीघ्र ही मैं कुछ दुधारू भैसें प्राप्त करनेवाला हूँ। ये तुम्हारे अमेरिकी बाइसनों जैसी नहीं हैं, बल्कि विशाल आकारवाली, बालरहित, आधे समय पानी में रहनेवाली हैं और काफी मात्रा में गाढ़ा दूध देती हैं।

पिछले कुछ महीनों के दौरान मैं बंगाल के दो सर्वाधिक नम पर्वतों – शिलांग तथा दार्जिलिंग में निवास कर दमा के दो दौरे झेल चुका हूँ। अब मैं बंगाल के किसी भी पहाड़ पर जाने का प्रयास नहीं करने वाला हूँ।[२५]

बेलूड़ मठ, ७ सितम्बर, १९०१ : पिछले तीन दिनों से यहाँ दिन-रात वर्षा हो रही है। हमारी दो गायों को बछड़े हुए हैं।[२६]

बेलूड़ मठ, ७ सितम्बर, १९०१ : वर्षा के विषय में कहना होगा कि अब उनका पूरे जोर से आक्रमण शुरू हो गया है, दिन-रात प्रबल वेग से पानी बरस रहा है, जहाँ देखो वहीं वर्षा-ही-वर्षा है। नदियाँ उफान लेकर अपने दोनों तटों को प्लावित कर रही हैं, तालाब-सरोवर सभी जल से परिपूर्ण हो उठे हैं। वर्षा होने पर मठ के अन्दर जो जल रुक जाता है, उसे निकालने के लिए एक गहरी नाली खोदी जा रही है। इस कार्य में कुछ हाथ बँटाकर मैं अभी-अभी लौटा हूँ। कहीं-कहीं तो कई फीट तक पानी भर जाता है। मेरा विशालकाय सारस, हंस तथा बतखें, सभी पूर्ण आनन्द में विभोर हैं। मेरा पालतू काला हिरण मठ से भाग गया था और उसे ढूँढ़ निकालने में हम लोगों को कई दिन तक बहुत ही परेशानी उठानी पड़ी थी। मेरा एक बतख दुर्भाग्यवश कल मर गया। करीब एक सप्ताह से उसे साँस लेने में कष्ट का अनुभव हो रहा था। इस परिस्थिति को देखकर हमारे एक वृद्ध रसिक साधु कह रहे थे, ''महाशय, इस कलिकाल में जब सर्दी तथा वर्षा से बतख को जुकाम हो जाता है और मेढक को छींक आने लगती है, तो फिर इस युग में जीवित रहना बेकार है।''

एक हंसी के पंख झड़ रहे थे। उसका कोई इलाज न मालूम होने के कारण एक पात्र में कुछ जल के साथ थोड़ा-सा 'कार्बोलिक एसिड' मिलाकर उसमें उसे कुछ मिनट के लिए इसलिए छोड़ दिया गया था कि या तो वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो उठेगी या समाप्त हो जायगी; परन्तु वह अब ठीक है।[२७] (क्रमशः)

सन्दर्भ

२०. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ. २०६; **२१.** वही, खण्ड ९, पृ. ८९; **२२.** वही, खण्ड ८, पृ. ३७९; **२३.** The Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड ९, पृ. १६०-६१; **२४.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३८१; **२५.** वही, खण्ड ६, पृ. २०६; **२६.** The Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड ९, पृ. १६३; **२७.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३८४;

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

२७२. ना जाने किस वेष में नारायण आ जाएँ

स्वामी रामतीर्थ के पूजागृह में एक सर्प ने बिल बनाया था। एक दिन उन्होंने सर्प को बिल में से सिर उठाए देखा, तो उन्होंने भोग लगाए हुए दूध का कटोरा बिल के पास रख दिया। सर्प ने दूध पिया और बिल के अन्दर चला गया। ऐसा क्रम कई दिनों तक चला, किन्तु एक दिन जब सर्प ने दूध नहीं पीया, तो वे चिन्तित हो उठे। उन्हें विश्वास था कि साक्षात् भगवान ही दूध पीने आते हैं। उन्होंने सोचा कि भगवान शायद रूठ गए हैं, इसीलिए भोग का दूध उन्होंने नहीं पीया है। उन्होंने जब देखा कि सर्प ने दिन भर में दूध नहीं पीया, तो दूसरे दिन उन्होंने कटोरे को बिल के पास रखते हुए कहा, ''भगवन, यदि आप भोग ग्रहण नहीं करेंगे, तो मैं भी आज से अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।'' सर्प ने दूध ग्रहण नहीं किया और बिल में चला गया, तो वे उस दिन निराहार रहे। शिष्यों ने सुना तो उन्होंने स्वामीजी से कहा, गुरुदेव, साँप विषैला होता है और हमारा दुश्मन भी। फिर भी आश्चर्य है कि आप उसे नित्य दूध पिलाते हैं और आज उसके दूध न पीने पर अन्न-जल का त्याग कर दिया है। आप अन्धविश्वासी न बनें। आपके स्वास्थ्य के लिये अन्न-त्याग करना कदापि उचित नहीं।'' स्वामीजी केवल मुस्कुराए। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया।

दूसरे दिन भी जब साँप ने दूध नहीं पीया, तो उसके सामने जमीन पर सिर रखते हुए वे साँप से बोले, ''आपको दूध न पीना हो, तो मत पीजिये। आप मेरा खून पी सकते हैं। मैं आपको भूखा नहीं देख सकता। शिष्यों ने देखा, तो भागकर दरवाजे के पास जाकर खड़े हो गए और चिल्लाकर उनसे कहा, ''आपका यह सोचना कि सर्प भूखा है, गलत है। कीड़े आदि के खाने से वह भूखा नहीं होगा हमारी आपसे प्रार्थना है कि एक तुच्छ साँप के लिये अपनी जान जोखिम में न डालें। ''स्वामीजी ने सिर उठाकर कहा —

**''वो है मेरे खून का प्यासा, मैं हू उसके दर्द का मारा।
दोनों का है पंथ न्यारा, या वो जाने या मैं जानूं।।''**

इतने में सर्प बिल में से बाहर आया और जब उसने स्वामीजी के झुके हुए सिर के ऊपर छत्र की भाँति अपना फन रखा, तो शिष्यों को विश्वास हो गया कि साक्षात् भगवान ही सर्प का रूप धारण किये हुए हैं।

उन्होंने हाथ जोड़कर वहाँ से ही सर्पदेवता को नमन किया। नाग वहाँ से हटकर जब धीरे-धीरे दरवाजे की ओर आने लगा, तो शिष्य भय के मारे दूर जाकर खड़े हो गए। साँप आगे कहाँ गया, उन्हें पता ही नहीं चला। वापस आकर उन्होंने स्वामीजी को सारी बात बताई और कहा, ''हम स्वीकार करते हैं कि भगवान ही नाग देवता के रूप में दुग्ध-पान करते थे। उनके यहाँ से चले जाने के कारण आप अनशन के अपने प्रण को त्याग कर भोजन ग्रहण करें। हम आपके प्रति श्रद्धावनत हैं कि आपने हमें भगवान का दर्शन कराया।'' स्वामीजी ने मुस्कुराकर कहा, ''ना जाने किस वेष में नारायण आ जाएँ।'' ○○○

धर्म-जीवन का रहस्य (५/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भगवान श्रीराम का चरित्र धर्म के किसी एक पक्ष के लिए नहीं है। उनके जीवन में धर्म का एक व्यापकतम रूप है, धर्म का समग्र रूप जिसमें निवृत्ति, प्रवृत्ति, त्याग, सत्य, अहिंसा, सदाचार या अन्य जितने गुण हैं, जैसे हिंसा धर्म है या अहिंसा, इस तरह के जितने प्रश्न हैं, उन सबकी मीमांसा हुई है। कुछ महापुरुषों के चरित्र हिंसाप्रधान हैं, तो कुछ ऐसे हैं, जो अहिंसा को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। आपको भगवान ऋषभदेव जैसे चरित्र मिलेंगे, जो महानतम अहिंसापरायण हैं। दूसरी ओर भगवान परशुराम हैं, जो शस्त्र को उपयोगी मानकर, वध करके भी समाज को बदलने की चेष्टा करते हैं। तो ये सभी उपादेय, कल्याणकारी हैं और सभी हमारे लिए वन्दनीय हैं।

भगवान राम के चरित्र का मुख्य उद्देश्य यह था कि उन्होंने मानव के जीवन में धर्म के सम्बन्ध में जो समस्याएँ आ सकती हैं और आती हैं, उन सबको उन्होंने अपने जीवन में स्वीकार किया और अपने चरित्र के द्वारा ही उन्होंने उन सबका उत्तर दिया। रामचरितमानस के चरित्र का जो विस्तार है, उसे दृष्टि में रखकर भगवान राम के लिए महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में कह सकते हैं – **रामो विग्रहवान धर्मः**। राम क्या हैं – मानो धर्म ही शरीर धारण करके आ गया हो। जब भगवान राघवेन्द्र, लक्ष्मण और सीताजी वन की ओर जाते हैं, उस समय गोस्वामीजी ने भी भगवान राम के लिए इसी शब्द का प्रयोग किया। भगवान श्रीराम जब राज्य छोड़कर चले, तो पूछा गया कि ये तीनों जो जा रहे हैं, इस तीन का अर्थ क्या है? तब वे बोले –

संग सुबंधु पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजीवलोचन रामु चले, तजि बाप को राजु बटाउ की नाईं।।
(कवितावली २/१)

लक्ष्मण को धर्म, श्रीसीताजी को क्रिया और भगवान राम अखण्ड ज्ञान, इस प्रकार इसे अनेक रूपों में प्रगट किया गया है। पर भगवान श्रीराम मानो धर्म के समग्र अंगों के मूर्त रूप हैं। वस्तुतः धर्म क्या है, यदि आप इसे समझना चाहें; और यदि हम उनके चरित्र को आदि से लेकर अन्त तक पढ़ें, तो उनके चरित्र के द्वारा धर्म की जो व्याख्या की गई है, उसे साकार रूप देने वाले दूसरे पात्र श्रीभरत हैं।

भगवान राम के चरित्र को समझने में एक बहुत बड़ी समस्या यह आती है कि जब किसी व्यक्ति के मन में कोई संस्कार बड़ा प्रबल होता है, तो उसी के आधार पर प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ता है। शास्त्रों में एक वाक्य आता है – देवताओं के चरित्र का अनुकरण नहीं करना चाहिए – **न देवचरितं चरेत**। यह वाक्य उपयोगी भी है और यदि दुरुपयोग किया जाय, तो अनुपयोगी भी है। मुझे स्मरण आता है, एक बड़े विद्वान् संन्यासी थे। उनके अपने संस्कार थे और वे अपनी स्पृश्यता तथा अस्पृश्यता के संस्कार को बिलकुल धर्म के अनुकूल मानते थे। किसी ने उनसे पूछा कि भगवान राम ने तो केवट को हृदय से लगा लिया। रामायण में ऐसा ही लिखा हुआ है। वे रामायण का भी बड़ा सम्मान करते थे। पर उन्होंने समाधान ढूँढ़ निकाला। एक तो उन्होंने कहा कि भगवान राम ने जो कुछ किया, वह हम लोगों को थोड़े ही करना चाहिए। वे तो ईश्वर हैं, ईश्वर चाहे जो भी कर सकता है; और इसके साथ ही उन्होंने एक दूसरा समाधान भी ढूँढ़ लिया। बोले – क्या हुआ, हृदय से लगाया होगा, पर बाद में स्नान कर लिया होगा। तो उनको सन्तोष हो गया कि चलो, हृदय से भी लगा लिया और साथ ही शास्त्र के धर्म की रक्षा भी हो गई। तो ऐसा अर्थ लगाकर, यदि हम उनको भी अपने जैसा ही सिद्ध करना चाहें, तब तो उसका कोई उपाय नहीं है। अब दवा की कोई दवा थोड़े ही होती है। दवा दी गई, तो यदि कोई कहे कि यह दवा मुझसे नहीं खाई जाती, यह दवा खाने के लिए कोई दवा दीजिए। श्रीराम ने तो अपने चरित्र के द्वारा जो यथार्थ था, उसे प्रगट किया। उनका चरित लोगों के अनुसरण करने के लिए है –

चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु।। २/८७

यही तो संकेत है। भगवान श्रीराम जब अवतरित होते हैं, उस समय क्या धर्मात्माओं की कमी थी? एक से एक

बढ़कर धर्मात्मा थे, महापुरुष थे, बड़े उच्चकोटि के चरित्र के लोग थे। वह युग महापुरुषों से पूर्णत: भरा हुआ था। एक ओर थे महाराज दशरथ, जो महान धर्मात्मा माने जाते थे। दूसरी ओर थे महाराज जनक, जो महान ज्ञानी माने जाते थे। एक ओर थे ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, जो ब्रह्मा के पुत्र के रूप में वन्दनीय थे। दूसरी ओर थे ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, जो वेदों के मंत्रद्रष्टा हैं और जिन्होंने अपनी साधना के द्वारा असम्भव तक को सम्भव बनाकर दिखा दिया था। कितना कहें, साक्षात् भगवान परशुराम के रूप में भगवान का एक अवतार भी विद्यमान था। तो ये सभी वन्दनीय हैं, फिर भगवान राम के अवतार का क्या अर्थ है, क्या उपयोगिता है? इसका उत्तर यही है कि उन महापुरुषों में महानता होते हुए भी, समग्र कल्याण के लिए उस पूर्ण अभिव्यक्ति की आवश्यकता थी। उन महापुरुषों की अपनी-अपनी भूमिकाएँ हैं और उन भूमिकाओं में उन्होंने उचित ही किया। लेकिन तब भी उन भूमिकाओं के द्वारा धर्म का कोई एक विशेष पक्ष ही प्रकाशित हुआ। धर्म का समग्र रूप उनके चरित्र के माध्यम से प्रगट नहीं हुआ, चाहे वह निष्काम कर्मयोग का पक्ष रहा हो या धर्म का पक्ष, ये सभी पक्ष कहीं-न-कहीं अधूरे रह गये थे। भगवान राम उनको पूर्णता प्रदान करने के लिए आए थे। लीला के प्रारम्भ से देख लीजिए, अवतार लिया तो किस वर्ण में लिया? – क्षत्रिय वर्ण में। उद्देश्य क्या है? उस समय वर्ण परम्परा की दृष्टि से ब्राह्मण वर्ण को सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्राप्त था। भिन्न-भिन्न समय की अपनी धारणाएँ और मान्यताएँ होती हैं। परन्तु ईश्वर की कोई जाति होती है क्या? ईश्वर का कोई वर्ण है क्या? कभी वे मछली के रूप में अवतार लेते हैं, कभी वे कछुए के रूप में अवतार लेते हैं, कभी सूकर के रूप में अवतार लेते हैं और कभी वाराह के रूप में –

मीन कमठ सूकर नरहरी ।
बामन परसुराम बपु धरी ।।
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो ।
नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ।। ६/११०/७-८

जब वे पशुओं के रूप में भी अवतार लेते हैं, तो फिर विविध वर्णों में और मनुष्यों में अवतार लेने की तो बात ही क्या ! अवतार के ये जो विविध रूप हैं, ये भी सोद्देश्य हैं। आप व्यवहार में भले ही कुछ मान्यताएँ रखते हों, पर जहाँ तक ईश्वर का प्रश्न है, यदि हम उसे सर्वव्यापी मानते हैं, तो चराचर में व्याप्त वह ईश्वर मछली, कछुआ, सूकर बन कर यही बताना चाहता है कि सारे रूपों में मैं ही तो विद्यमान हूँ या मैं सारे रूपों में अवतार लेकर लोक-मंगल करता हूँ।

ईश्वर का यह एक विशेष संकेत है। उस युग में धर्म के व्याख्याता ब्राह्मण थे। उन्हें ही उच्च वर्ण मानते थे, जैसे गुरु वशिष्ठ हैं। भगवान श्रीराम के चरित्र का जो श्रीगणेश हुआ, वहीं पर आप धर्म का महानतम सूत्र देखेंगे। परशुरामजी ने ब्राह्मण के रूप में अवतार लिया। श्रीराम भी यदि चाहते, तो ब्राह्मण के रूप में, सर्वश्रेष्ठ वर्ण के रूप में जन्म ले लेते, गुरु के रूप में उपदेश देते कि धर्म क्या है? पर उन्होंने इस क्रम को पलट दिया। उन्होंने गुरु के रूप में उपदेश दिया ही नहीं। वे आए भी, तो ऐसे वर्ण के रूप में, जो सबसे ऊपर नहीं है। तो भगवान मानो बड़ा अनोखा परिर्वतन चाहते थे। गुरुओं के द्वारा शिष्यों में परिवर्तन तो बहुत देखा जाता है, पर शिष्य के द्वारा गुरुओं में परिवर्तन तो श्रीराम के द्वारा ही हुआ। शिष्य बनकर आये, उपदेश नहीं दिया, पर उस युग के जो गुरुजन थे, उनमें से प्रत्येक ने यही अनुभव किया कि ऐसा शिष्य मिला, तो बड़ा अच्छा हुआ। इस शिष्य को सिखाना तो कुछ है नहीं, वस्तुत: इसी से सीखना है। बड़ी मीठी बात आती है, जब महाराज दशरथ ने निर्णय किया कि राम को राज्य दें, तो वे गुरु वशिष्ठ के पास गये। बोले – गुरुदेव, यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं राम को युवराज पद दे दूँ। गुरुजी ने कहा – अवश्य। तब वे बोले – महाराज, चलिए राम को सूचना भी आप ही दे दीजिए और राम को उपदेश भी दीजिये कि राजधर्म क्या है? राजा के क्या कर्तव्य हैं? गुरुजी मुस्कुराये। राम के पास पहुँच गये। भगवान राम को ज्योंही सूचना मिली कि गुरुदेव आये हैं, तो द्वार पर आकर उनके चरणों मे साष्टांग प्रणाम किया –

गुर आगमनु सुनत रघुनाथा ।
द्वार आइ पद नायउ माथा ।। २/९/२

गुरुदेव को भीतर ले गये। उनको सिंहासन पर बैठाया और बोले – गुरुदेव, जब मैंने आपके आने का समाचार सुना, तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यदि कोई आदेश देना था, तो गुरुदेव मुझे बुलवा लेते, पर आप स्वयं चले आए ! वे पूछ सकते थे कि आपका उद्देश्य क्या है? पर भगवान राम ने जब वह व्याख्या सुनाई, तो गुरुजी को लगा कि जब स्वयं तुम्हारे पास व्याख्या विद्यमान है, तो अब मैं क्या व्याख्या करूँ? तब भगवान राम ने कितनी सुन्दर व्याख्या की ! भगवान राम के ये ही शब्द थे। बोले – "महाराज, आपका आगमन अमंगलों को नष्ट करने वाला और मंगलकारी तो है ही, आपने पधारकर इस गृह को भी धन्य कर दिया।

आप इसीलिए चलकर आए होंगे कि राम को बुला दूँगा, तो वह धन्य हो जायेगा, पर उसका घर तो चलकर नहीं आ सकता। आप इतने कृपालु हैं कि जो आप के पास नहीं आ सकता, आप ही उस तक चले आते हैं।'' बस, भगवान राम का यह वाक्य सुनकर गुरुदेव तो परम आनन्द में मग्न हो गये। आये थे समझाने के लिये, उपदेश देने के लिए और यहाँ श्रीराम हाथ जोड़े हुए कहने लगे – महाराज, सेवक के घर स्वामी का पधारना समस्त मंगलों का मूल है; आपने धन्य कर दिया, अब आज्ञा दीजिए –

सेवक सदन स्वामि आगमनू।
मंगल मूल अमंगल दहनू।। २/९/५

भगवान ने एक बात और कही। बोले – महाराज, आज मुझे एक नई बात आपके आने से दिखाई दी। – क्या? बोले – प्रभु को तो अधिकार ही है कि वह सेवक को आज्ञा दे, और सेवक का कर्तव्य है कि वह आज्ञा का पालन करे। पर आज आपने तो बड़ा अनोखा कार्य किया। बोले – अभी तक तो मैं यही समझता था कि प्रभु वह है, जिसमें प्रभुता हो, परन्तु आपके आने से मुझे प्रभु शब्द का एक नया अर्थ ज्ञात हुआ। प्रभु शब्द का जो अर्थ भगवान ने निकाला, वह किसी शब्दकोश में नहीं मिलेगा। वह तो केवल श्रीराम की अर्थ निकालने की पद्धति है। बोले – मुझे आज पता चला कि प्रभु वह है, जो प्रभुता को छोड़ सके –

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू।। २/९/७

यदि आपने प्रभुत्व का प्रयोग किया होता, तो मुझे बुला लिया होता, पर जब स्वयं सेवक के पास आ गये, तो आप धन्य हैं। आप प्रभुता को छोड़ सकते हैं, अत: आप ही सच्चे प्रभु हैं। जो व्यक्ति जिस वस्तु का स्वामी होता है, वह उस वस्तु को अपने पास रखने और जब चाहे उसे छोड़ने में स्वाधीन होता है। पर जो बेचारे प्रभुता को छोड़ नहीं पाते, तो प्रभुता के स्वामी भला कैसे हो सकते हैं? कदापि नहीं हो सकते। परन्तु आप प्रभुता के स्वामी हैं। अब आप आज्ञा दीजिए।

गुरुजी गद्गद हो गए। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु आ गये। – क्या कहूँ राम, महाराज दशरथ ने कह दिया, तो मुझे तुम्हारे पास आना ही था। इसलिए मैं आ गया, पर अब मैं क्या कहूँ कि राजा का क्या कर्तव्य है! तुमने जो कुछ कहा, उसका अर्थ यह है कि राजा वह नहीं है कि जो राजा होने के पद का अभिमान पाल ले, प्रभु वह नहीं है कि जो प्रभुता का अभिमान स्वीकार करके सिंहासन पर बैठे। इससे बढ़कर राजधर्म की कोई व्याख्या क्या हो सकती है! गुरुजी एकान्त में बोले – राम, तुम्हारे पिताजी ने कहा, तो उनके सन्तोष के लिए तो मुझे आना ही था, इसलिए मैं आ गया।

भगवान राम ने यहाँ एक सूत्र दिया कि यदि हम अभिमान के द्वारा धर्म की स्थापना करेंगे, तो वह अभिमान कहीं-न-कहीं धर्म को दोषयुक्त बना देगा। वह धर्म टिकाऊ नहीं होगा। तो भगवान राम के चरित्र में हम क्या देखते हैं? शिष्य बन जाते हैं और बिना उपदेश दिए, केवल अपनी सेवा के द्वारा, अपने आचरण के द्वारा ही 'धर्म' का स्वरूप प्रकट करते हैं। उनके दिव्य आचरण में ही गुरुओं को भी धर्म का एक नया स्वरूप दिखाई देने लगा।

इसके बाद जब भगवान राम का राज्य हो गया, तो एक बार फिर गुरुदेव का आगमन होता है। परन्तु श्रीराम तो वही हैं। जब राजा नहीं थे, तब भी गुरुदेव के चरणों में प्रणाम और पूजन किया और आज भी गुरुदेव आये, तो वैसे ही स्वागत किया। उन्हें सिंहासन पर ले गये, पूजन किया, उनके चरणों का प्रक्षालन किया और चरणामृत का पान किया। फिर हाथ जोड़कर बोले – क्या आज्ञा है? गुरुदेव मुस्कुराए, आज जो बात करनी है, वह अकेले में ही हो सकती है। श्रीराम ने सेवकों को जाने का आदेश दिया। एकान्त हो गया। श्रीराम वैसे ही हाथ जोड़े नीचे बैठे हैं।

वशिष्ठजी ने मुस्कुरा कर कहा – अब परदा गिर चुका है, अब नाटक की आवश्यकता नहीं है। मंच पर तो अभिनेता को ठीक वही व्यवहार करना चाहिए, जो पाठ उसे दिया गया हो। परन्तु जब परदा गिर जाय, तो क्या भीतर भी वह उसी तरह का व्यवहार करता है? वशिष्ठजी बोले – यह तो स्पष्ट ही है कि तुम बहुत अच्छे अभिनेता हो। परन्तु इसके बाद वे अपने जीवन का संस्मरण सुनाने लगे। उन्होंने कहा – धर्म के सन्दर्भ में मेरी जो धारणा थी, वह तो तुम्हारे अवतार के साथ-ही-साथ बदलने लगी। बोले – तुम्हारे पूर्वपुरुष इक्ष्वाकु ने जब आकर मुझसे कहा कि ब्रह्माजी ने कहा है कि मैं उनके कुल का पुरोहित हो जाऊँ, तो मैं बोला – नहीं, पुरोहित तो वह होता है, जिसे दक्षिणा का लोभ हो। मुझे दक्षिणा नहीं चाहिए। मुझे किसी राजा की आवश्यकता नहीं है। मैं तपस्वी हूँ, वन में रहकर प्रसन्न हूँ। वे लौट गये। मुझे सन्तोष था, प्रसन्नता थी कि शास्त्रों ने त्याग की महिमा का गुणगान किया है, त्याग ही धर्म का सर्वश्रेष्ठ पक्ष है और मैंने उसी को जीवन में स्वीकार किया है। परन्तु तुम्हारे अवतार लेने के पहले ही, तुम्हारे स्वागत में ही मुझे त्याग का एक नया अर्थ मिल गया। इक्ष्वाकु ने जाकर

ब्रह्माजी से कहा – वशिष्ठ तो कहते हैं कि वे पुरोहित नहीं बनेंगे। तब ब्रह्माजी आये और पूछा – यह बताओ कि तुमने पुरोहित बनना स्वीकार क्यों नहीं किया? मैं बोला – जिसके जीवन में संग्रह और भोग की आवश्यकता हो, वही पुरोहित बनता है। क्या आपकी दृष्टि में त्याग श्रेष्ठ नहीं है? अत: यदि मैं त्याग का जीवन स्वीकार करता हूँ, तो आपको भला क्या आपत्ति हो सकती है? ब्रह्माजी ने कहा – पुत्र, मैं भी तुम्हें त्याग का उपदेश देने ही आया हूँ। – परन्तु महाराज, आप तो पुरोहित बनने के लिए कह रहे हैं। बोले – पुत्र, तुमने त्याग तो कर दिया, परन्तु अभी तक त्याग के अभिमान का त्याग नहीं किया। तुम सोचते हो – मैं त्यागी हूँ, इसलिए राजा से श्रेष्ठ हूँ और पुरोहित लोग मुझसे नीचे हैं। तुम्हारे मन में त्याग का अभिमान होगा, तभी तो तुमने पुरोहित को नीचा मान लिया। बताओ, तुम यह त्याग क्यों कर रहे हो? मैं बोला – ईश्वर को पाने के लिए। उन्होंने कहा – देखो, इस त्याग के द्वारा तुम्हें त्यागी होने का सम्मान भले ही मिले, पर तुम्हें एक सूचना दे रहा हूँ। – क्या? यदि तुम्हारा लक्ष्य ईश्वर को ही पाना है, तो इसी कुल में, इक्ष्वाकु के वंश में ईश्वर जन्म लेने वाला है। यदि पुरोहित बन जाओगे, तो उसे जल्दी पा लोगे और वन में रहोगे, तो न जाने कब मिलेगा? बोलो, पुरोहित बनोगे या नहीं? मैं बोला – महाराज, बिलकुल बनूँगा –

उपरोहित्य कर्म अति मंदा।
बेद पुरान सुमृति कर निंदा।।
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही।
कहा लाभ आगें सुत तोही।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा।
होइहि रघुकुल भूषन भूपा।। ७/४८/६-८
तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन।।७/४८

मेरी समझ में आ गया था कि लक्ष्य केवल त्याग नहीं है। धर्म की व्याख्या तो वहीं से बदलनी शुरू हो गई। क्रिया धर्म नहीं, बल्कि ईश्वर की प्राप्ति ही धर्म है। जब मुझे लगा कि पुरोहित बनकर तुम्हें पाना अधिक सरल है, तो मैंने बड़ी प्रसन्नता के साथ पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया।

प्रभु ने धर्म को यह नया अर्थ दिया। शास्त्रों में धर्म की जो व्याख्या दी गई है, तदनुसार जब तक हमारे अन्त:करण में 'मैं' की वृत्ति शेष है, तब तक धर्म समग्र नहीं होगा। वह धर्म जो 'मैं' से प्रेरित होगा, वह धर्म को क्रिया के रूप में तो परिणत करेगा, परन्तु वह ईश्वर की प्राप्ति नहीं करायेगा।

उनका त्याग का अभिमान छूट गया। गोस्वामीजी ने लिखा है कि जब विवाह कराया और लौट कर आए, तो माँग कर अपना नेग लिया –

नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा।। १/३५३/२

साधारणतया पुरोहित लोग कहते हैं – यहाँ पर यह दीजिए। गुरु वशिष्ठ भी कहते हैं – महाराज दशरथ, भूल गये क्या? उनका संकेत क्या था? राम जब सामने होते थे, तो माँगने में भी रस आता था, आनन्द आता था। वे कोई आवश्यकता से नहीं माँग रहे थे, बल्कि उन्हें लगा कि जब पुरोहित का नाटक किया है, तो उसके साथ अब भी त्यागी का ही नाटक करता रहूँ, तो यह सफल नाटक नहीं होगा।

इस नाटक में अपनी भूमिका का मैंने पूरा-पूरा निर्वाह किया। तुमने भी शिष्य बनकर शिष्यत्व का अति सुन्दर अभिनय किया। फिर गुरुजी ने धीरे से विनोद किया – अभिनेता तो तुम और हम, दोनों हैं, पर मैं तुमसे बड़ा अभिनेता हूँ। – क्यों? बोले – तुमने ईश्वर होकर भी शिष्य का अभिनय किया, मैंने तुम्हें अपना चरणोदक पीने दिया, मैं कितना साहसी अभिनेता हूँ, जरा इसकी भी तो कल्पना करो। मैं जान रहा था कि तुम साक्षात् ब्रह्म हो और तुम मेरे चरण धो रहे थे, चरणोदक उठाकर पी रहे थे, मैं तुम्हें रोक सकता था कि नहीं, नहीं, यह क्या कर रहे हो? पर मुझे लगा कि जब मैंने नाटक में गुरु की भूमिका स्वीकार की है, तो नाटक को पूरा करने के लिए मैंने तुम्हें शिष्य के रूप में चरणोदक पीने दिया। जब मैंने इतना सफल अभिनय किया, तो आज जब परदा गिर चुका है, तो अभिनेता को उसके इतने अच्छे अभिनय पर वेतन और पुरस्कार तो मिलना ही चाहिए। तब उन्होंने क्या माँगा? इतने निरभिमानी महापुरुष हो गये कि उन्होंने राम को 'शिष्य' कहकर या 'राम' कहकर भी नहीं पुकारा, 'नाथ' कहकर सम्बोधित करते हुए बोले – मुझे मुक्ति भी नहीं चाहिये, मेरा बार-बार जन्म हो और तुम्हारे चरण-कमलों में मेरा अनुराग हो –

नाथ एक बार मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।। ७/४९

इस प्रकार भगवान राम के आगमन से पहले ही मानो 'धर्म' का श्रीगणेश हो गया, उसकी भूमिका प्रस्तुत हो गयी। इसके बाद हम आगे देखेंगे कि उन्होंने धर्म के किन विविध स्वरूपों को अपने जीवन के माध्यम से प्रकट किया। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (२७)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुये वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और ब्रह्मचारी बोधमय चैतन्य ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२४.०६.१९६०

प्रश्न – क्या निर्विकल्प अवस्था में भी ठाकुर जी के मुख पर हँसी रहती थी?

महाराज – पहले यह समझो, उस अवस्था में क्या देह-मन और बुद्धि रहती है ! हो सकता है कि समाधि होने के पहले ठाकुर जी के मुख में जो भाव रहता था, वही अभिव्यक्त होता था। ठाकुर ने कहा था, भाव में सीताजी को देखा, कितना कष्ट है ! मैं किसी पुस्तक में पढ़ा था, सीताजी के मुख पर हँसी थी। वह एक विलक्षण हँसी थी। वैसी हँसी सत्त्वगुणियों में देखी जाती है। उनलोगों की आँखों से मानो आनन्द झर रहा है। कई लोग तो दिखाने के लिये नीरस हँसी हँसते हैं। कई लोग स्वामी को खुश करने के लिये शुष्क हँसी हँसते हैं।

२५-०६-१९६०

कोई युवक-संन्यासी दूसरे आश्रम से आये हैं। वे उस आश्रम में अनेकों कठिनाइयों से गुजर रहे हैं। वे सब बातें सुनकर महाराजजी कहने लगे कि ये सब समस्याएँ तो रहेंगी ही, किसी भी दिन संसार को तुम अपने मन के अनुकुल नहीं पाओगे। मैं सारा जीवन ही कोशिश कर रहा हूँ कि यदि किसी को तैयार कर सकूँ। वास्तविक लक्ष्य का ध्यान रखो – संन्यास क्या है, उसका साध्य, साधन और उपाय क्या है, उसी में ध्यान दो।

इस जगत में तो देखने का कुछ नहीं है। सब मिथ्या बोध हो रहा है। किन्तु क्या करूँ, भाग जाने का कोई उपाय नहीं है। अरे राजा मरने से जो होता है, भिखारी मरने से भी वही होता है। पहले बुद्धिवृत्ति की आवश्यकता है। बुद्धि के द्वारा प्रत्याहार और धारणा तक किया जाता है। किन्तु ध्यान करने के लिये इस्पात के समान स्नायु तथा लौह जैसी दृढ़ मांस-पेशी चाहिये। बहुत देर तक स्थिर बैठकर सम्पूर्ण मन को बल-पूर्वक खींचकर 'न किंचिदपि चिन्तयेत्' – कुछ भी न सोचे, ऐसा भाव रख पाने के बाद ध्यान होता है। देखा नहीं, गणित बनाते समय किसी का मस्तिष्क टन-टन करता है। यदि किसी प्रकार से मन को ध्यान में बैठा सकते हो, तो फिर जगत तुम्हें नचा नहीं पायेगा। तुम राजा हो जाओगे।

ये सब जो अनियन्त्रित कार्य देख रहे हो, वह सब तमोगुण का रजोगुण है। सत्त्वगुण के रज में आश्रम छोटा बनता है और उसे सुन्दर सजाकर रखता है। जो लोग बहिर्मुखी हैं, वे लोग वाद्ययन्त्रों की ध्वनि से मुग्ध हो जाते हैं, जो लोग संस्कृतिप्रिय होते हैं, वे लोग मधुर-संगीत सुनना चाहते हैं और संन्यासी नीरवता, शान्ति चाहते हैं।

सामान्य व्यक्ति नहीं जानता है कि धर्म का क्या अर्थ होता है। धर्म – धृ+मन्, अर्थात् जो पकड़ कर रहता है। जैसे जल का धर्म शीतलता है, अग्नि का अग्नित्व है, वैसे ही मनुष्य के कुछ धर्म हैं, जिससे उसका मनुष्यत्व बना रहता है। **'विद्यासत्यमक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम्।'** बहिर्मुखी लोग एक ऐसी वस्तु धर्म में देखना चाहते हैं, जो उन लोगों के मस्तिष्क में प्रवेश कर आघात करे। बहुत लम्बी जटा, दाढ़ी और खड़ाऊँ आदि रहने से तब उनका मन समझता है, बुद्धि समझती है। नहीं तो, हम लोगों के जैसा सामान्य वस्त्र उन लोगों के मस्तिष्क में कोई विचार ही जागृत नहीं करेगा। कुछ विलक्षणता चाहिये ! हमलोगों ने तो ठाकुरजी की सन्तानों को देखा है, वे लोग बाहर से बिल्कुल साधारण दिखते थे।

२७-०६-१९६०

दोपहर में गीता के अठारहवें अध्याय का पाठ हो रहा था, महाराज बगल में बैठे हुये हैं। उन्होंने यह श्लोक सुनकर कहा –

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,

न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज मठ में तालाब में मछली पकड़ते थे। उसे देखकर ब्रह्मचारी और संन्यासी लोग काना-फुसी करते थे। उनलोगों ने दूसरे किसी शास्त्र का अध्ययन तो नहीं किया। नहीं तो, पढ़ने से ये सब बातें नहीं कहते।

एक व्यक्ति को बहुत समझाया था। उसे कहा करता था कि पहले योजना बना लो और अनुमानित खर्च निर्धारित कर लो। क्या करना चाहते हो, कितना खर्चा कर सकोगे, तथा कितने रुपये लगेंगे, पहले निश्चित करके तब कार्य में लगना। किसी आदर्श के प्रति प्रेम नहीं रहने से सौन्दर्य-बोध का ज्ञान नहीं होता है। वह इतना-सा भी इधर-उधर सहन नहीं कर पाता था। मन्दिर की सीढ़ी के सामने जूता रखने की सुविधा नहीं थी। लोग मग को उल्टा करके नहीं रखते थे। पहले मैं अपना जूता थोड़ी दूर रखता था, इसे देखकर दूसरे लोग भी दूर रखते थे।

२८-६-१९६०

प्रश्न - यदि मैं देखता हूँ कि कोई महिला मरणासन्न अथवा बहुत संकट में है और वहाँ पर दूसरा कोई नहीं है, तो क्या सहायता करना कर्तव्य है?

महाराज - हाँ, सहायता करना। उसे समान्य रूप से सेवा करके सामने आस-पास के गाँव को दिखा कर बता देना कि वहाँ चली जाओ। अर्थात् इसके बाद ऐसा व्यवहार करना जैसे उसे पहचानते ही नहीं हो। असली बात है कि तुम्हें अपने मन को समझ कर चलना होगा। यदि देखो कि तुम्हारे संन्यास जीवन मे कठिनाई हो रही है, तो बिलकुल ही नहीं करना।

स्कूल में जो कार्य करते हो, उसे सेवा की तरह करना होगा, मानो मेरे ठाकुरजी ही लड़कों के रूप में मेरे पास मेरी सेवा लेने के लिये आये हैं। यदि इस बोध से स्कूल का कार्य नहीं करते हो, तो फिर तुम्हारे और सामान्य शिक्षक में क्या अन्तर है? स्कूल को भी मन्दिर समझना होगा। किन्तु आज ही नहीं हो रहा है, यह सोचकर निराश होने से समझना होगा कि तुम्हारा मन इसे मन्दिर नहीं समझना चाहता है। हम तो मरने के लिये बैठे हैं, किन्तु अभी भी निराश नहीं हुये हैं।

यदि संन्यासी में हार्दिक संवेदना न हो, वह दूसरों के दुख से न रोता हो और दूसरों के लिये स्वार्थ का त्याग नहीं कर सकता हो, तो वह गृहस्थ से भी अधिक अधम है। यदि वह भगवान का चिन्तन न करके केवल सुख-सुविधा को ही ढूँढ़ता हो और दूसरों के लिये त्याग स्वीकार न करता हो, तो वह कैसा साधु है? गृहस्थ भी तो अपनी पत्नी, बच्चे और माता-पिता के लिये त्याग स्वीकार कर रहे हैं, इनके लिये अपना स्वार्थ छोड़ देते हैं। किन्तु संन्यासी को तो वह सब नहीं है। इसलिये वह जो कुछ करता है, ईश्वर के लिये नहीं करने से अत्यधिक स्वार्थी हो जायेगा। क्या वह केवल अपने शरीर-मन के लिये करेगा? क्या सम्मान और सुख पाने के लिये करेगा?

किसी वस्तु के साथ स्वयं को संयुक्त कर देने से ही दुःख मिलता है। यह संसार सदा परिवर्तित हो रहा है। हमेशा कितने रूप ले रहा है, इसमें कितने शोक-दुख, हर्ष-विषाद हैं, मार-काट चल रही है। किन्तु सबमें सहन करके रहना होगा। इस संसार से हँसते हुये निकल जाना होगा। थोड़ा सा क्रोध करने पर ऐसी ही संसार की माया में डूब जाओगे। इसलिये श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं - **तांस्तितिक्षस्व भारत !** – हे अर्जुन सहन करो ! सोचो कि तुम्हारे गुरुदेव कुछ लड़कों के बीच से होते हुये तुम्हें ले जा रहे हैं। उन्होंने पहले ही कह दिया है कि तुम्हें कितने लोग कितनी प्रकार की बातें कहेंगे, किन्तु क्रोध नहीं करना। जब तुमने चलना आरम्भ किया, तब किसी ने ईंट चलाकर मारा, किसी ने थूक दिया और किसी ने कीचड़ फेंक दिया। तब तुम्हें हँसते हुये चले जाना होगा। यदि तुम क्रोधित होकर उन्हें मारने के लिये जाते हो, तो तुम इन लोगों के साथ ही रहो। नहीं तो, हँसते-हँसते पार हो जाने से ही मुक्ति मिलेगी। **(क्रमशः)**

जनवरी - २०१५ के जयन्ती और त्योहार

०४ स्वामी तुरीयानन्द
१२ स्वामी विवेकानन्द, राष्ट्रीय युवा दिवस
२२ स्वामी ब्रह्मानन्द
२३ स्वामी त्रिगुणातीतानन्द
२४ सरस्वती पूजा (वसन्त पंचमी)
२६ गणतन्त्र दिवस, नर्मदा जयन्ती

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (१)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामाजी ने कलकत्ता में दिया था, इसका सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है।)

माननीया सौभाग्यवती सरला जी, भाई बसंत कुमार जी ! आदरणीय संन्यासी गण, देवियों और सज्जनो! प्रति वर्ष की भाँति इस बार पुन: आप सबसे मिलने का योग उपस्थित हुआ है और जैसा कि भाई श्रीकान्त जी ने बताया, प्रात:कालीन सत्र में केनोपनिषद पर और संध्याकालीन सत्र में गीता के तीसरे अध्याय कर्मयोग पर चिन्तन करने का अवसर प्राप्त होगा। विगत कुछ वर्षों से हमलोग इस प्रकार मिलते आ रहे हैं। पिछले वर्ष इसी शृंखला में ईशावास्योपनिषद को हमने चिन्तन का विषय बनाया था। उपनिषद साहित्य क्या है, इसे आप लोग भलीभाँति जानते हैं। अभी भाई श्रीकांत जी ने उपनिषद साहित्य और गीता के सम्बन्ध में सुन्दर प्रस्तावना भी आपके सामने रखी है। मैं उन्हें साधुवाद देता हूँ कि इतने अल्प समय में उसके सारतत्त्व को उन्होंने आपके सामने प्रस्तुत किया है।

उपनिषद साहित्य क्या है?

यह उपनिषद साहित्य दर्शन है, फिलॉसफी के अर्थ में नहीं, विचार या चिन्तन के अर्थ में नहीं, बल्कि देखने के अर्थ में। दृश् धातु से दर्शन शब्द निकला है, जिसका अर्थ होता है देखना। ऋषियों ने देखा, जो देखा उसे लिपिबद्ध किया। लिपिबद्ध करना, यह शब्दावली भी उपनिषद साहित्य पर लागू नहीं होती, क्योंकि जिन ऋषियों ने देखा, उन्होंने तो लिपिबद्ध करके रखा नहीं था, श्रुति परम्परा से यह साहित्य हमें प्राप्त होता रहा है। श्रुति का तात्पर्य है सुनकर के। आचार्य ने शिष्य को सुनाया। कालान्तर में वही शिष्य स्वयं आचार्य बना, तब उसने अपने शिष्य को वह विधा दी और इस प्रकार यह परम्परा चलती आई, इसीलिये इसे श्रुति परम्परा कहते हैं।

एक दूसरी परम्परा हमारे यहाँ स्मृतियों की रही है। स्मृतियों का लेखन होता रहा, पर श्रुति परम्परा में लेखन कहीं नहीं था। लेखन तो अभी कुछ ही वर्षों पहले की बात है, दो सौ या तीन सौ वर्ष पहले लेखन की परम्परा प्रारम्भ हुई। उसके पहले इतनी विस्तृत परम्परा नहीं थी। किसी दूसरी भाषा में उपनिषद का पहला अनुवाद फारसी भाषा में हुआ। दाराशिकोह ने इसका अनुवाद फारसी में कराया। दाराशिकोह औरंगजेब के भाई थे। वे उपनिषद साहित्य से बड़े ही प्रभावित थे।

उन्होंने फारसी भाषा में कुछ उपनिषदों का अनुवाद कराया। बाद में इन उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद राजा राममोहन रॉय के द्वारा किया गया। यह भी हमारे लिए रोचक है कि वह अनुवाद अंग्रेजी में उन्होंने दारा शिकोह के फारसी अनुवाद से किया। क्योंकि उन्हें स्वयं संस्कृत भाषा का यथेष्ट ज्ञान नहीं था। राजा राममोहन राय ने ब्राह्म समाज की स्थापना की। उस समय उन्होंने देखा कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव बहुत जोरों से नवयुवकों पर पड़ रहा है और ये नवयुवक पाश्चात्य संस्कृति की ओर बढ़े चले जा रहे हैं तथा उनमें से कई इसाई धर्म को भी अंगीकार कर रहे हैं। यह उनके लिए हृदय-विदारक घटना थी। उन्हें सूझ नहीं रहा था कि क्या किया जाय? फारसी और अंग्रेजी के वे बहुत अच्छे विद्वान थे। उनके हाथ में कहीं से दारशिकोह द्वारा फारसी भाषा में अनूदित उपनिषद हाथ में लगा। वे उसे पढ़कर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने बाइबिल पढ़ी थी और हिन्दूत्व के सम्बन्ध में ऐसे ही कुछ पढ़ा था। क्योंकि उस समय प्राचीन शास्त्रों को छोड़कर हिन्दुत्व के सम्बन्ध में कोई विशेष ग्रंथ रहा हो, ऐसा हमें ज्ञात नहीं है। यदि किसी ने हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में, उसके ज्ञान-विज्ञान के बारे में बहुत सोचकर के अंग्रेजी में लिखा है, तो ये राजाराममोहन राय ही थे। जब फारसी में उपनिषद को पढ़ते हैं, तो अभीभूत हो जाते हैं। उनको ऐसा लगा कि जिस बाइबिल को पढ़कर हमारे यहाँ के युवक ईसाईयत की ओर बढ़ रहे हैं, उस बाईबिल से कहीं अच्छे तत्त्व धर्म के सम्बन्ध में, चिन्तन और दर्शन के क्षेत्र में, उपनिषद में भरे हुए हैं। उसके बाद उन्होंने उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया और नवयुवकों को आह्वान करके कहा कि देखो ! यह हमारा अपना साहित्य है। हमें धर्म और दर्शन के लिये बाहर कहीं नहीं जाना है। हमारे पास ही सारे तत्त्व बाईबिल से कहीं अधिक प्रांजल, अधिक स्पष्ट, अधिक प्रेरणादायक रूप में विद्यमान हैं। इनको पढ़ो। इन उपनिषदों को आधार बनाकर ही उन्होंने अपनी नयी संस्था का नाम ब्राह्म-समाज दिया। ब्रह्म शब्द उपनिषदों से लिया गया है और हम सभी बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि इस

ब्रह्म का अर्थ क्या होता है। कितने लोगों को इस साहित्य ने प्रभावित किया। मैंने अभी आपके समक्ष निवेदित किया था कि भारत में दर्शन की परम्परा थी।

ऋषि कौन हैं?

ऋषि कौन हैं? जिन्होंने मन्त्रों का दर्शन किया, इनको हम ऋषि कहते हैं – **ऋषयः मंत्रद्रष्टारः**। उपनिषदों में जो श्लोक हैं, वे मन्त्र हैं। इन मन्त्रों का दर्शन उन ऋषियों ने किया और वही अनुभूति श्लोकबद्ध होकर हम तक आयी। कौन थे ये ऋषि? पता नहीं चलता है। ईशावास्योपनिषद सबसे छोटी उपनिषद है, इसके भीतर कितना गूढ़ ज्ञान भरा है ! किन्तु इसके प्रणेता कौन हैं, कहीं भी कुछ पता नहीं चलता है। उपनिषद के प्रणेता कौन हैं, अमुक उपनिषद की रचना किसने की, इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कहीं पर भी नाम का उल्लेख नहीं है। जहाँ पर नाम है, वह नाम समझ लीजिए कि छद्म है। श्वेताश्वेतर उपनिषद नामक एक उपनिषद हमें मिलती है। अब ये श्वेताश्वेतर नाम के ऋषि थे या छद्म नाम है, इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह छद्म नाम है। अन्य किसी भी उपनिषद में किसी ऋषि का नाम नहीं मिलता है।

केनोपषिद नाम क्यों?

अभी हम केनोपनिषद पर विचार कर रहे हैं। केनोपनिषद नाम क्यों पड़ा? क्योंकि केनोपनिषद का प्रारम्भ ही केन शब्द से होता है। नाम रखने की यह परम्परा रही है। ये जो अनुभवी लोग थे, उन्होंने अपने को बड़ा गुप्त रखा। इसलिए गुप्त रखा कि जो आत्मा या ईश्वर का सन्देश है, वह तो उसी व्यक्ति के द्वारा दिया जा सकता है, जिसका अपना कोई सन्देश नहीं है। ईश्वर उसी के माध्यम से बोलता है, जिसका अंहकार नहीं बोलता। मेरे माध्यम से ईश्वर क्यों नहीं बोलते? क्योंकि मेरे माध्यम से मेरा अंहकार ध्वनित होता है। अहंकार और ईश्वर ये दोनों एक साथ नहीं चल पाते हैं। उपनिषदों में हमें जो अद्भुत अमृत मिला है, वह इसलिये मिला है कि ऋषियों ने अपने आपको पूरी तरह से गोपन करके रखा। यह पता ही नहीं चलता है कि इस अमृत कौन प्रदान कर रहा है। समाज को अमृत मिल जाये, यही उनकी अभिलाषा है। अमृत को कौन बाँट रहा है, यह बहुत गौण है। इसलिये उपनिषद में आप कहीं भी किसी ऋषि का नाम नहीं देखेंगे, जिससे कहा जाये कि अमुक ऋषि अमुक उपनिषद के रचयिता हैं। जैसे माइक है, वह तब तक आपको अच्छा लगता है, जब तक वह मेरी बात को आप तक पहुँचा दे रहा है। वह माइक भी तभी तक मेरी बात को आप तक पहुँचाता है, जब तक उसकी अपनी कोई बात नहीं है। यदि माईक अपनी बात करने लगे, तब तो वह मेरी बात को आप तक नहीं पहुँचा सकेगा। तब आप कहेंगे कि माइक बन्द करो, बहुत किरकिरा रहा है, कुछ सुनने नहीं दे रहा है। ठीक इसी प्रकार ईश्वर की ध्वनि उसी के माध्यम से सुनाई देती है, जिसमें अहं, अहंकार की ध्वनि नहीं है। यह सूत्र है।

उपनिषद में हम कहीं भी अहम् की ध्वनि नहीं सुनते हैं, इसीलिये आत्मा की ध्वनि सुनते हैं। ऋषि कहाँ हैं, यह पता ही नहीं चल रहा है। ऐसी यह विलक्षण उपनिषद है और उसके ऋषि हैं। दूसरा तथ्य है दर्शन। ऋषियों ने मन्त्र को देखा – **ऋषयः मंत्रद्रष्टारः**। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या मन्त्रों को देखा जा सकता है? जैसे हम कुछ लिखा हुआ आँखों से देखते हैं, वैसे ही क्या मन्त्रों को भी देखा जा सकता है? यदि नहीं देखा जा सकता है, तो फिर मंत्रद्रष्टारः कहने का क्या तात्पर्य हुआ? अगर देखा जा सकता है तो कैसे देखा जा सकता है? क्या इन आँखों से जैसे हम देखते हैं, इसी प्रकार इन मन्त्रों को भी देख सकते हैं? यह एक प्रश्न है। इस प्रश्न का समाधान मुझे तब तक नहीं मिला था, जब तक मैंने आइंस्टीइन की जीवनी नहीं पढ़ी थी। उन्होंने आत्मचरित लिखा है। उन्होंने भी एक मन्त्र देखा, जिसे हम ऊर्जा समीकरण के नाम से जानते हैं, Energy equation : $E = MC^2$ – ऊर्जा समीकरण वह है, जहाँ हमें ऊर्जा की माप मिलती है। E है ऊर्जा की माप और M है किसी पदार्थ का Mass – वजन। मान लीजिए किसी एक पदार्थ का बहुत छोटा सा टुकड़ा है। इस पदार्थ के टुकड़े से कितनी ऊर्जा निकल सकती है, इसकी माप निकाली है, आइंसटाइन ने। अपने उस सूत्र के द्वारा उन्होंने सिद्ध किया है कि उस छोटे से टुकड़े से जो ऊर्जा निकलेगी, वह E है और उसका जो वजन है, उसे Mass - M समझ लीजिए और C का मतलब है प्रकाश की गति, C^2 = प्रकाश की गति वर्ग। मैं इसे बहुत सरल रूप से आपको समझा रहा हूँ। यह ऊर्जा की माप है। वैज्ञानिकों ने आइंसटाइन से पूछा – महोदय ! आपने तो विलक्षण समीकरण संसार को दिया है ! सचमुच यह समीकरण अत्यन्त विलक्षण है ! **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

४५. हमारी दुर्दशा और उसका कारण

हमारे पुराणों में एक कथा मिलती है। भगवान ने एक बार धरती पर शूकर के रूप में अवतार लिया। उनके साथ एक शूकरी भी थी और आगे चलकर उनकी कई शूकर सन्तानें भी उत्पन्न हुईं। वे अपने परिवार के साथ बड़े मौज से रहते थे और अपने दिव्य ऐश्वर्य तथा अपनी प्रभुता को भूलकर कीचड़ में लोटते हुए आनन्द से चिग्घाड़ते रहते थे। देवता लोग बड़े चिन्तित हुए। वे लोग धरती पर आये और भगवान से शूकर-शरीर को छोड़कर वैकुण्ठलोक लौट चलने के लिये विनती करने लगे। परन्तु भगवान ने उनकी एक नहीं सुनी और गुर्राकर उन्हें भगा दिया। वे बोले, "मैं बड़े आनन्द में हूँ, मेरे इस रंग में भंग मत डालो।" दूसरा कोई चारा न देखकर देवताओं ने भगवान का शूकर-शरीर नष्ट कर डाला। उसी क्षण भगवान में उनकी दिव्य भव्यता वापस लौट आयी और उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे शूकर-शरीर में भी कैसे प्रसन्न रहे!

मनुष्य भी इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं। जब कभी वे निर्गुण-निराकार ईश्वर की चर्चा सुनते हैं, तो बोल उठते हैं, "मेरे व्यक्तित्व का क्या होगा? इससे तो मेरा व्यक्तित्व ही खो जाएगा।" दुबारा जब कभी ऐसा विचार मन में उठे, तो उस शूकर की दशा को याद कर लेना और सोचना कि तुममें से प्रत्येक के भीतर अनन्त आनन्द की अद्‌भुत खान है! तुम अपनी वर्तमान स्थिति से कितने सन्तुष्ट हो! पर जब तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव होगा, तब तुम इस बात पर विस्मित रह जाओगे कि तुम क्यों अपने ऐन्द्रिक-जीवन को त्यागने में इतनी अनिच्छा दिखा रहे थे! तुम्हारे व्यक्तित्व में भला है ही क्या? क्या यह सूअर के उस जीवन से अच्छा है? और तुम इसे छोड़ना ही नहीं चाहते! प्रभु हम-सबका कल्याण करें! (९/८२)

४६. संसार एक मृग-मरीचिका है

एक बार मैं पश्चिमी भारत में भारतीय समुद्र के तटवर्ती मरुभूमि में भ्रमण कर रहा था। बहुत दिन तक निरन्तर पैदल भ्रमण करता रहा। किन्तु प्रतिदिन यह देखकर मुझे महान आश्चर्य होता था कि चारों ओर सुन्दर झीलें हैं, वे चारों ओर वृक्षों से घिरी हैं और वृक्षों की परछाई जल में पड़ रहा है। मैं अपने मन में कहने लगा, "ये कैसे अद्‌भुत दृश्य हैं! और लोग इसे रेगिस्तान कहते हैं!" मैं महीने भर वहाँ भ्रमण करता रहा और प्रतिदिन वे सुन्दर अद्भुत दृश्य हमें दिखाई देते रहे।

एक दिन मुझे बड़ी प्यास लगी। मैंने वहाँ एक झील में जाकर अपनी प्यास बुझाने को सोचा। अत: मैं उनमें से एक सुन्दर निर्मल झील की ओर आगे बढ़ा। जैसे ही मैं आगे बढ़ा, वैसे ही सारा दृश्य न जाने कहाँ लुप्त हो गया। तभी सहसा मुझे बोध हुआ कि 'अरे, सारे जीवन मैं जिस मरीचिका की बात पुस्तकों में पढ़ता रहा हूँ, यह वही मरीचिका तो है!' इसके साथ ही मेरे मन में यह विचार भी आया कि 'पिछले महीने मैं प्रतिदिन मरीचिका ही देखता रहा, लेकिन समझ नहीं सका कि यह मरीचिका है।'

अगले दिन मैंने पुन: चलना प्रारम्भ किया। फिर से वे ही सरोवर तथा सुन्दर दृश्य दिखने लगे, परन्तु अब साथ-साथ यह बोध भी बना रहा कि यह सचमुच की झील नहीं, बल्कि मरीचिका है। संसार भी ठीक ऐसा ही है। हम प्रतिदिन, महीने-पर-महीने, प्रतिवर्ष इस संसार-मरीचिका में यात्रा कर रहे हैं, परन्तु समझते नहीं कि यह मरीचिका है। एक दिन यह मरीचिका अदृश्य हो जाएगी, परन्तु वह फिर आ जाएगी – शरीर को पूर्व कर्मों के अधीन रहना पड़ता है, इसलिये मरीचिका पुन: वापस आ जाएगी। जब तक हम कर्म में बँधे हुए हैं, तब तक संसार हमारे सम्मुख आता ही रहेगा। नर, नारी, पशु, वनस्पतियाँ, हमारी आसक्तियाँ और कर्तव्य, सब हमारे पास वापस आयेंगे, किन्तु वे पहले की भाँति हमें प्रभावित नहीं कर सकेंगे। इस नये ज्ञान के प्रभाव से कर्म की शक्ति का नाश हो जाएगा, उसका विष चला जाएगा। तब यह जगत हमारे लिए पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाएगा; चूँकि हमें मरीचिका और उसकी उल्टी सच्चाई का बोध हो चुका है, अत: हमें जगत् के साथ-ही-साथ उसकी वास्तविकता भी दिखती रहेगी। (२/३६-३७) ○○○

प्रत्येक सफल मनुष्य के स्वभाव में कहीं-न-कहीं विशाल सच्चरित्रता और सत्यनिष्ठा छिपी रहती है और उसी के कारण उसे जीवन में इतनी सफलता मिलती है।
– स्वामी विवेकानन्द

माँ की मधुर स्मृतियाँ – १३४

माँ के मुख से सुनी हुई घटनाएँ

अनिल गुप्त

१९४४ ई. के नवम्बर में प्रकाशित लेखक के 'श्रीमाँ' नामक पुस्तक के प्रथम तीन अध्याय हम २००६ के अंकों में प्रकाशित कर चुके हैं। प्रस्तुत आलेख महेन्द्रनाथ गुप्त 'श्रीम' की अप्रकाशित डायरी पर आधारित है। यह अंश बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' के खण्ड २ से इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव द्वारा अनूदित है। इसका सम्पादन विवेक-ज्योति के पूर्व संपादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

निकुंज देवी (श्रीम या मास्टर महाशय की पत्नी) प्राय: ही दक्षिणेश्वर और काशीपुर के उद्यान में श्रीरामकृष्ण और माँ का दर्शन करने जाया करती थीं। कभी-कभी वे रात में माँ के पास ही रह जातीं। जब वे पुत्रशोक में पगला-सी गयी थीं, तब ठाकुर विशेष चिन्तित हुए थे और उनके लिये कुछ खास व्यवस्था भी की थी। उन्हीं के आदेश पर निकुंज देवी ने उस समय कुछ दिनों तक दक्षिणेश्वर में माँ के आश्रय में निवास किया था। ठाकुर ने इस समय निकुंज देवी को विशेष रूप से सावधान कर दिया था कि आत्महत्या करने पर बारम्बार इसी दुखमय संसार में वापस आना पड़ता है और पास ही गंगाजी होने से स्वयं भी सतर्क रहते थे। भक्तवत्सल कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण ने इस प्रकार अपने स्नेहस्पर्श से अपने भक्त की पत्नी के हृदय की ज्वाला मिटा दी और उसे शान्ति से परिपूर्ण कर दिया था। जिस समय ठाकुर अस्वस्थ होकर काशीपुर में निवास कर रहे थे, उस समय निकुंज देवी स्वप्न में ठाकुर की बीमारी को बढ़ते देखकर रो पड़ी थीं, "हे प्रभो, तुम्हारे पास जाकर ही मेरी सारी ज्वाला मिट गयी थी।" यह उक्ति इसी बात का परिचायक है। अहा ! कैसी असीम थी उनकी करुणा !

ठाकुर श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद निकुंज देवी १२९३ बंगाब्द (१८८७ ई.) के १५ भाद्र को माँ के साथ तीर्थ गयी थीं। निकुंज देवी माँ की संगिनी की रूप में गयी थीं। वे लोग पहले देवघर में दर्शन आदि करके काशीधाम गये और वहाँ तीन दिन रहे। निकुंज देवी माँ के साथ विश्वनाथ की आरती देखने जाती थीं। एक दिन आरती समाप्त होने के बाद उन्होंने माँ के मस्तक तथा मुखमण्डल पर एक अपूर्व रक्तिम आभा देखी और माँ को तत्काल मन्दिर से तेज कदमों से अपने डेरे पर लौटते देखकर वे अत्यन्त विस्मित हुईं। बाद में माँ से पूछने पर उन्होंने बताया था, "ठाकुर मेरा हाथ पकड़ कर मुझे मन्दिर से बाहर ले आये थे।" निकुंज देवी ने उस समय माँ की जिस अपूर्व ज्योतिर्मयी मूर्ति का दर्शन किया, उसे सबको बताया। काशीधाम का दर्शन करने के बाद अयोध्या में एक दिन रुककर माँ वृन्दावन आयीं। वहाँ महीना भर रहने के बाद निकुंज देवी को मलेरिया बुखार हो गया। बड़े दुख के साथ 'मेरा दुर्भाग्य' कहते हुए माँ की चरणधूलि सिर पर धारण करके वे स्वामी अभेदानन्द के साथ कलकत्ते लौट गयीं। निकुंज देवी ने बताया था कि वृन्दावन में रहते समय माँ एक बार फिर अपने हाथों के कंगन उतारने लगीं, तो ठाकुर ने श्रीमाँ को दर्शन देकर कहा था, "तुम कंगन मत उतारो। गौरदासी से वैष्णवतंत्र जान लेना। कृष्ण जिसके पति हैं, वह विधवा नहीं होती – वह चिरसधवा है।"

बाद में माँ द्वारा तीर्थभ्रमण समाप्त करके कलकत्ते लौट आने के उपरान्त निकुंज देवी प्राय: ही माँ का दर्शन करने जातीं। मास्टर महाशय भी भक्तवत्सल भगवान श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य से वंचित होकर बड़ी असहायता का बोध कर रहे थे। वे बीच-बीच में माँ को अपने घर में लाकर उनकी सेवा किया करते थे। माँ भी कई बार मास्टर महाशय के घर आकर कभी पन्द्रह-बीस दिन, तो कभी महीने भर से भी अधिक रहा करती थीं। स्वप्न में घट की स्थापना करने का आदेश पाकर माँ ने मास्टर महाशय के घर में आकर पूजा तथा घट-स्थापन की भी व्यवस्था की। इसी ठाकुर-घर में माँ ने खूब पूजा, जप एवं ध्यान किया है !

निकुंज देवी जब-जब माँ से मिलतीं और उनसे जो बातें होतीं, उनका कुछ-कुछ अंश मास्टर महाशय को बतातीं और वे उन बातों को अपनी डायरी में लिख कर रख लेते। इसी डायरी के आधार पर माँ द्वारा कही गयी घटनावली यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

निकुंज देवी – माँ, संसार में केवल यंत्रणा और अशान्ति है। केवल तुम्हारे पास आने से ही तप्त हृदय को शान्ति मिलती है। तुम्हें माँ कहकर पुकारने से हृदय शीतल हो जाता है !

माँ – बहू, तुमने उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) देखा है, तुम्हें अब क्या चिन्ता? वे तुम्हारी बहुत प्रशंसा करते थे। उन्होंने मुझसे कहा था, 'मास्टर की पत्नी कैसी उदार है, कैसी सरल दृष्टि से देखती रहती है !' बेटी, मेरी बात सुनो, संसार में

सुख-दुख, अच्छा-बुरा लगे ही रहते हैं, जब जिसका समय आता है, वह ठीक आ जाता है और भोग भी करा लेता है। मन को सबल बनाओ और उसे ईश्वर में लगाये रखो। इस प्रकार केवल 'अशान्ति-अशान्ति' नहीं करना चाहिये।

निकुंज देवी – तुम्हारे साथ बातें करने से मन में बल आता है और प्राण शीतल हो जाते हैं। इसीलिये माँ, जब भी चित्त में व्यग्रता होती है, मन तुम्हारे पास आने को व्याकुल हो जाता है।

माँ – बहू, तब मेरी आयु १८-१९ साल रही होगी, तब (१८७२ ई.) उनके साथ सोती थी। वे एक दिन बोले,

श्रीरामकृष्ण – तुम कौन हो?

माँ – मैं तुम्हारी सेवा करने आयी हूँ।

श्रीरामकृष्ण – क्या?

माँ – मैं तुम्हारी सेवा करने आयी हूँ।

श्रीरामकृष्ण – तुम मेरे सिवाय और किसी को नहीं जानती?

माँ – नहीं, तीन बार कहती हूँ।

'एक दिन कहने लगे, 'क्या बच्चे होंगे? देख ही तो रही हो, सब मर जाते है।' मैं बोली, 'क्या सभी मर जाते हैं?'

"एक दिन खाते समय नमक न रहने पर मैंने कहा था, 'नमक नहीं है'। वे तिरस्कारपूर्वक बोले, 'क्या नहीं है?' 'नहीं' नहीं कहना चाहिये। सब जुटाकर रखना चाहिये।

"ससुराल में रहते समय रामलाल के पिता (रामेश्वर चट्टोपाध्याय) रात में मुझे सोने जाने को कहते और हँसते। उन दिनों ठाकुर के साथ सोती; सारी रात बातचीत में ही कट जाती। बताते – कैसे गृहस्थी का काम किया जाता है, कैसे सबके साथ व्यवहार किया जाता है; और यह ध्यान रखना पड़ता है कि ईश्वर ही एकमात्र अपने और नित्य वस्तु हैं।

"जब मेरी माँ कामारपुकुर आती, तो खूब स्नेह-यत्न करते और कहते, 'आप अचार बनाकर खिलाइये।'

"जब मैं जयरामबाटी में थी, तो वहाँ आये। मुझसे बोले, 'मिट्टी लगाकर पैर धो दो।' वैसा करने पर घर की महिलाएँ देखकर आपस में कहने लगी, 'ओ माँ, सारदा का पति के साथ कुछ भी नहीं हुआ, तो भी देखो तो...।'

"मेरी सास (चन्द्रामणि देवी) जब पुत्रशोक से विह्वल थीं, तब वे सासजी के पास ही रहते, कितना समझाते-बुझाते! एक दिन प्रार्थना की, 'माँ! मैं तुम्हारा नाम-गुणगान करता हूँ और माँ यदि हमेशा शोक करती रहेगी, रोती रहेगी, तो मैं कैसे करूँगा? अत: माँ, उनका मन पलट दो।' अन्तत: वैसा ही हुआ, सासजी हमेशा भाव में रहती थीं। ○○○

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

दिगम्बरो वापि च साम्बरो वा
त्वगम्बरो वापि चिदम्बरस्थः।
उन्मत्तवद्वापि च बालवद्वा
पिशाचवद्वापि चरत्यवन्याम्।।५४०।।

अन्वय – दिगम्बरः वा साम्बरः अपि च वा त्वग्-अम्बरः अपि च वा चिदम्बरस्थः, उन्मत्तवत् वा बालवत् अपि वा पिशाचवत् अपि अवन्याम् चरति।

अर्थ – (वह आत्मवेत्ता) कभी नंगा रहता है, तो कभी उत्तम वस्त्र धारण करता है; कभी वल्कल या मृगचर्म धारण करता है, तो कभी उसका आच्छादन ज्ञान मात्र रहता है; कभी उन्मत्त के समान, तो कभी अबोध बालक की भाँति, और कभी पिशाच के समान भूतल पर विचरण करता है।

कामान्निष्कामरूपी संश्चरत्येकचरो मुनिः।
स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः।।५४१।।

अन्वय – एकचरः, निष्कामरूपी सन् स्वात्मना एव सदा तुष्टः, स्वयं सर्वात्मना स्थितः मुनिः कामान् चरति।

अर्थ – एकाकी विचरण करनेवाला, कामनाशून्य होकर सर्वदा अपनी आत्मा में ही सन्तुष्ट रहनेवाला, स्वयं सभी की आत्मा के रूप में विराजमान, ब्रह्मज्ञ पुरुष समस्त भोगों को स्वीकार करता है।

क्वचिन्मूढो विद्वान् क्वचिदपि महाराजविभवः
क्वचिद्भ्रान्तः सौम्यः क्वचिदजगराचारकलितः।
क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतः क्वाप्यविदित-
श्चरत्येवं प्राज्ञः सततपरमानन्दसुखितः।।५४२।।

अन्वय – सतत-परमानन्द-सुखितः प्राज्ञः क्वचित् मूढः, (क्वचित्) विद्वान्, क्वचित् महाराजविभवः अपि, क्वचित् भ्रान्तः, (क्वचित्) सौम्यः, क्वचित् अजगर-आचारकलितः, क्वचित् पात्रीभूतः, क्वचित् अवमतः क्व अविदितः अपि एवं चरति।

अर्थ – कभी वह अज्ञानी के रूप में, तो कभी विद्वान् के रूप में; कभी सम्राट् के समान वैभव में रहता है, कभी पागल के समान भ्रमण करता है, कभी सौम्य या प्रिय रूप में प्रकट होता है और कभी अजगर के समान निश्चल पड़ा रहता है; कभी वह सम्मानित होता है, कभी अपमानित होता है और कभी दूसरों से अज्ञात रहता है; ब्रह्मज्ञ पुरुष इसी प्रकार निरन्तर परमानन्द में सुखी रहते हुए (पृथ्वी पर) विचरण करते हैं। (क्रमशः)

साधक-जीवन कैसा हो?

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द महाराज ने रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर द्वारा आयोजित आध्यात्मिक शिविर में मार्च, २०११ में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इसका टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने किया है तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

भगवान की असीम कृपा से हमें यह सुअवसर मिला है कि हम अपने जीवन के सम्बन्ध में थोड़ा विचार कर सकें। इस वर्ष चर्चा का विषय रखा गया है – साधक का जीवन कैसा हो? हम सभी साधक और साधिकायें हैं। हमलोग सामान्यत: साधना की चर्चा करते हैं, साधना के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुनते-पढ़ते हैं और कई बार साधना की तात्त्विक विवेचना भी करते हैं। मैंने सुना है, शायद आप लोगों ने भी सुना होगा कि कई बार साधना के तात्त्विक विवेचन में हमलोग बाल की खाल निकालने लगते हैं। तथाकथित सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म विचार करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु वह प्रयत्न केवल अहं की अभिव्यक्ति होती है।

हमें साधना का मनोविज्ञान जानना चाहिये। मनोविज्ञान की व्याख्या करते हुये स्वामी विवेकानन्द ने कहा है – Psychology is a science of sciences. – मनोविज्ञान विज्ञानों का विज्ञान है। मनोविज्ञान विज्ञानों का विज्ञान इसलिये है कि हम अपने मन का विश्लेषण कर सकें। इस पर साधना की पद्धतियों का विश्लेषण करनेवाले लोग, जब अपने आप को प्रगतिशील कहते हैं, बुद्धिवादी कहते हैं, तब वे अतियों पर चले जाते हैं। उन अतियों पर विचार करने के कारण वे साधना के व्यावहारिक धरातल को छोड़ देते हैं और बुद्धि-विलास में डूब जाते हैं। बुद्धि-विलास में डूब जाने के कारण वे लोग अपने लक्ष्य से चूक जाते हैं। विलास चाहे बुद्धि का हो, धन का हो, इन्द्रियों का हो, वह हमें लक्ष्य से दूर कर देता है। विलास हमें आध्यात्मिकता से हटा देता है।

वस्तुत: साधना का सम्बन्ध मन से है। इस मौलिक बात को हमे सदैव स्मरण रखना चाहिये। आगे हम इसी पर चर्चा और विचार करने का प्रयास करेंगे। मैं शास्त्र की बात आप से नहीं कहूँगा क्योंकि, मैं स्वयं शास्त्रज्ञ नहीं हूँ। मैंने विद्वानों से कुछ शास्त्र सुना है, थोड़ा-बहुत पढ़ा है। मेरे जीवन में यदि आप कोई शास्त्र पूछें, तो वह शास्त्र है – श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, श्रीमाँ सारदा देवी की जीवनी, सरल शब्दों में रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य। उसमें भी यद्यपि मैं विवेकानन्द के विराट साहित्य का अधिकारी नहीं हूँ, तथापि रामकृष्ण-भावधारा के आधार पर ही थोड़ा विचार करने का प्रयास करूँगा।

मैं आप से मन पर चर्चा की बात कह रहा था। शास्त्रों में कहा गया है – **मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:** – मन ही मनुष्यों के बन्धन और मुक्ति का कारण है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव भी 'रामकृष्णवचनामृत' में कहते हैं, – मन से ही बन्धन है और मन से ही मुक्ति ! इस तथाकथित मन से ही बन्धन और मन से ही मुक्ति पर विचार करते-करते हम इतना भटक जाते हैं कि अपने लक्ष्य से हट जाते हैं। हम यह नहीं समझ पाते कि मन का सबसे प्रथम सम्पर्क और सम्बन्ध 'मुझसे' है।

मैं आपसे एक मौलिक निवेदन करता हूँ। हमें हमेशा स्मरण रखना चाहिये कि साधना, विशेषकर आध्यात्मिक साधना, चाहे वह कोई भी आध्यात्मिक साधना क्यों न हो, वह सदैव उत्तम पुरुष में होती है या हो सकती है। प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष क्या है? 'वह व्यक्ति आ रहा है', यह प्रथम पुरुष है। 'तुम आ रही हो' या 'तुम आ रहे हो', यह मध्यम पुरुष है और 'मैं आप की सेवा में शब्दांजलि अर्पित कर रहा हूँ', यह उत्तम पुरुष है। आध्यात्मिक साधना सदैव उत्तम पुरुष में ही सम्भव है। आध्यात्मिक साधना का सम्बन्ध नितान्त वैयक्तिक है। स्वामीजी एक जगह कहते हैं – आध्यात्मिक साधकों की फौज नहीं होती। वे सदैव कम संख्या में ही होते हैं। साधना का सम्बन्ध सदैव व्यक्ति से होता है। किसी भी प्रकार की साधना मेरे व्यक्तिगत जीवन से या उत्तम पुरुष से प्रारम्भ होती है। एक बहुत बड़ी भूल हम साधक-साधिकाओं से होती है। हम सदैव साधना की बात प्रथम पुरुष या मध्यम पुरुष में करते हैं। यथा – जप करना चाहिये, ध्यान करना चाहिये, सत्संग करना चाहिये आदि

आदि। यह दूसरों को परामर्श है। हममें से कितने ऐसे लोग हैं, जो यह कहते हैं कि मुझे सत्संग करना चाहिये, मुझे ध्यान-जप आदि करना चाहिये? अधिकांश बार हम साधना को छोड़कर इधर-उधर की चर्चा करते रहते हैं। जैसे – 'मैं तो व्यस्त रहता हूँ , किन्तु जप करना चाहिये, वचनामृत पढ़ना चाहिये, वेदान्त पढ़ना चाहिये, यह बहुत अच्छी बात है।' इस प्रकार हम ये बातें दूसरों को करने के लिये बताते हैं, लेकिन स्वयं के पास सत्संग करने का, स्वाध्याय करने का समय नहीं है। हमारी चर्चायें बहिर्मुखी होती हैं और जब तक चर्चा बहिर्मुखी होती है, तो आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि में उसे Hetro Suggestion – दूसरों को परामर्श देना कहते हैं। दूसरों को दिया गया परामर्श मेरे लिये अधिक लाभकारी नहीं हो सकता है। भले ही थोड़ा कुछ हो जाय। कोई भी परामर्श जो मेरे जीवन का कल्याण करेगा, उसको आवश्यक रूप से Auto suggestion – आत्मसुझावप्रवण होना चाहिये। स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज को उनके एक संन्यासी शिष्य ने पूछा था कि महाराज मन में अवांछित विचार आते हैं। बहुत जप-ध्यान आदि करने का प्रयत्न करता हूँ, पर वे विचार जाते नहीं हैं। ब्रह्मानन्दजी ने कहा – तुम अपने मन को कहो, अरे मन ये अशुभ विचार तेरा सर्वनाश कर देंगे। तेरा आध्यात्मिक जीवन नष्ट हो जायेगा। तेरा सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जायेगा। यह बात स्वयं को बार-बार बताओ और अगर एक बार तेरे मन ने इसको पकड़ लिया, तो सारे अशुभ विचार अपने आप चले जायेंगे। तुझे अलग से कुछ नहीं करना पड़ेगा। अंग्रेजी में एक शब्द है – Suggest yourself – स्वयं को परामर्श दो।

आइये, अब हम मूल अर्थ से प्रारम्भ करें। हम सब साधक हैं और मेरी बहनें, बिटिया सब साधिकायें हैं। प्रसंग है – 'साधक का जीवन कैसा होना चाहिये?' साधक का जीवन कैसे होना चाहिये, इसे जानने के लिये मुझे इसको उत्तम पुरुष में लाना पड़ेगा कि मैं साधक या साधिका हूँ, मेरा जीवन कैसा होना चाहिये? साधक का जीवन कैसा हो? उसके पहले अपने जीवन पर दृष्टि डालें, तो ऐसा लगता है कि अरे इसमें क्या है? इतनी छोटी-सी बात है ! किन्तु यह छोटी-सी बात नहीं है ! जिन महापुरुषों के चरणों में बैठने का सौभाग्य मुझे मिला। मेरे कोटि जन्म का पुण्य फलित हुआ था कि रामकृष्ण मिशन के महापुरुषों के चरणों में १०-१५ वर्षों तक बैठने का सौभाग्य मुझे मिला था। उनलोगों के श्रीमुख से विभिन्न अवसरों पर सुनी हुई बातें हैं और जो कुछ थोड़ा-बहुत मैंने पढ़ा है, उसे आपके सामने रख रहा हूँ।

जब हम जीवन के विषय में विचार करते हैं कि साधक का जीवन कैसे होना चाहिये, तो हमारे सामने एक स्पष्ट चित्र होना चाहिये कि साधक का जीवन ऐसा हो। इस विषय पर आप-हम सभी व्याख्यान दे सकते हैं, आप लोगों में जो लेखक-लेखिका हैं, वे कदाचित् एक मोटी पुस्तक लिख सकते हैं कि साधक का जीवन कैसा हो, किन्तु यदि उन उपदेशों का मेरे अपने जीवन में पालन न हो, उससे मेरा कोई सम्बन्ध न हो, तो मेरा कुछ भी कल्याण नहीं होगा।

मान लीजिये साधना के उत्तम पुरुष एक लेखक हैं। वे साधना के सम्बन्ध में कोई प्रबन्ध या लेख लिख रहे हैं। वे लेख में क्या लिख रहे हैं, यह गौण हो जाता है और प्रधान हो जाता है कि पाठक क्या सोचेंगे? मानो वे पंचम वेद लिख रहे हैं। यह बात तो दूसरों के लिये हुई, किन्तु इससे मेरा क्या हुआ? व्यावहारिक दृष्टि से इस पर थोड़ा विचार करें। अब उत्तम पुरुष से स्वयं को शुरु करें। हमारे यहाँ अनादि काल से मनुष्य स्वभाव के बारे में बताया गया है और आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इस पर विचार किया है। पिछली शताब्दी में यूरोप में कार्ल युंग नामक एक वैज्ञानिक थे। उन्होंने मनुष्य के व्यक्तित्व के दो भेद बताये – बहिर्मुखी व्यक्तित्व तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्व। वे एक विचारशील और अपने क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ पुरुष थे। इस ज्ञान को विचार के द्वारा उन्होंने उपलब्ध किया था। हमारे ऋषियों ने भी हजारों साल पहले अन्तर्मुखी होने की बात कही थी। यहाँ हमें विशेष ध्यान रखना चाहिये कि पृथ्वी में कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं है, जो सर्वथा बहिर्मुखी हो, चाहे वह दुर्योधन ही क्यों न हो। उसी प्रकार संसार में ऐसा कोई भी नहीं है, जो सर्वथा अन्तर्मुखी ही हो, चाहे भगवान श्रीकृष्ण ही क्यों न हों। क्योंकि वे भी जब अर्जुन के रथ का संचालन कर रहे हैं, तब उन्हें भी बहिर्मुखी होना ही पड़ता है। वैसे ही हमारे जीवन में भी अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता होती रहती है। किन्तु हमारे विचारहीन व्यवहार के कारण हमारा जीवन या हमारा मन या हमारा व्यक्तित्व बहिर्मुख-प्रधान हो जाता है। संसार के करोड़ों लोगों का, अरबों लोगों का जीवन बहिर्मुख-प्रधान है और बहिर्मुख होने के कारण हमारी अन्तर्मुखता बहुत दुर्बल हो जाती है, क्षीण हो जाती है। उस दुर्बलता को हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं। कैसे? हमारी बहिर्मुखता इतनी प्रबल है कि अन्तर्मुखता का प्रयत्न हमें बेचैन कर देता है। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द की हिमालय-यात्रा (११)

स्वामी विदेहात्मानन्द

अब तक हमने देखा कि स्वामी अखण्डानन्द जी के साथ स्वामीजी ने छह दिन नैनीताल में निवास किया और उसके बाद पहाड़ों, जंगलों के मार्ग से अल्मोड़ा की ओर चल पड़े। मार्ग में स्वामीजी को कई प्रकार की आध्यात्मिक तथा अलौकिक अनुभूतियाँ हुईं। अल्मोड़ा में लगभग एक सप्ताह के प्रवास के दौरान कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएं हुईं। उसके बाद कई स्थानों का भ्रमण करते हुये हरिद्वार पहुँचे। -सं)

तिब्बती परिवार के साथ

हिमालय-भ्रमण के दौरान एक बार स्वामीजी एक तिब्बती परिवार के सम्पर्क में आये थे। उस अंचल में ऐसी प्रथा है कि एक ही स्त्री कई पुरुषों की पत्नी हो सकती है। तदनुसार उस परिवार के छह भाइयों की केवल एक पत्नी थी। स्वामीजी ने सहज भाव से इस बीभत्स आचार की निन्दा की थी और इसके विरुद्ध कई तर्क भी दिये। परन्तु जिस भाई से बातचीत हो रही थी, उसने चिढ़कर उलटे स्वामीजी से ही पूछ लिया, "स्वामीजी, आप साधु होकर भी भला कैसे इस प्रकार दूसरों को स्वार्थपरायण होने को कहते हैं? 'किसी चीज का केवल मैं ही भोग करूँगा, दूसरे नहीं' – क्या ऐसा विचार निन्दनीय नहीं है? हम भला क्यों ऐसे स्वार्थपरायण होंगे और हर कोई अपने लिये अलग पत्नी रखेंगे? हम सभी भाई सब कुछ समान रूप से मिल-बाँटकर उपभोग करते हैं!" स्वामीजी तिब्बती की इस अकाट्य युक्ति को सुनकर और उसकी सरलता पर मुग्ध हो गये। उन्होंने समझ लिया हर कार्य का अच्छा और बुरा, दोनों पहलू हो सकता है। उन्होंने यह शिक्षा प्राप्त की कि किसी भी आचार या विचार का सही मूल्यांकन करने के लिये उसे कई दृष्टियों से देखना और परखना आवश्यक है।[४९]

अमेरिका में एक बार सम्भवत: इसी काल का एक संस्मरण बताते हुए स्वामीजी ने अपने एक व्याख्यान में कहा था, "एक बार मैं हिमालय के अंचल में यात्रा कर रहा था और सामने लम्बा रास्ता दूर तक चला गया था। हम गरीब साधुओं को कोई कुली नहीं मिल सकता था, अत: पूरा मार्ग पैदल ही चलकर पार करना था। हम लोगों के साथ एक वृद्ध साधु भी थे। रास्ता चढ़ाव-उतराव से युक्त सैकड़ों मील का था। वे वृद्ध साधु उसे देखकर हताश होकर बोल उठे, 'ओह, महाराज, इतना लम्बा रास्ता कैसे पार करूँगा! मैं तो अब जरा भी नहीं चल सकता, मेरी तो छाती फट जाएगी।' मैंने उनसे कहा, 'जरा नीचे अपने पाँवों की ओर देखिए।' उनके वैसा ही करने पर मै बोला, 'आपके पाँवों के नीचे जो रास्ता है, उसे आप पार कर चुके हैं और आपके सामने जो सड़क दिखायी पड़ रही है, वह भी वही रास्ता है; और शीघ्र ही वह भी आपके पाँवों के नीचे आ जायेगा।' "[५०] स्वामीजी की बात सुनकर उन वृद्ध संन्यासी की निराशा दूर हो गयी और वे फिर अपने पथ पर अग्रसर हुए।

देहरादून में अखण्डानन्द के स्वास्थ्य में कोई सुधार न होते देख पण्डित आनन्द-नारायण ने उन्हें इलाहाबाद का रेलभाड़ा देकर सहारनपुर भेज दिया। वहाँ के वकील बाबू बंकूबिहारी ने अखण्डानन्द से कहा, "इलाहाबाद उतनी अच्छी जगह नहीं है, आप मेरठ चले जाइये।" उनसे परिचय-पत्र लेकर अखण्डानन्द मेरठ गये और डॉक्टर त्रैलोक्यनाथ घोष के घर ठहरे। लगभग डेढ़ महीने तक डॉ. घोष ने ही उनकी चिकित्सा की।

मेरठ पहुँचकर अखण्डानन्द जी ने वहाँ से १४ नवम्बर, १८९० के अपने पूर्वोल्लेखित पत्र में काशी के बाबू प्रमदादास मित्र को लिखा है – "सहारनपुर में मैं एक बाबू के यहाँ २-३ दिन रहा। उन्होंने 'उस समय मेरे लिये इलाहाबाद अस्वास्थ्यकर होगा' कहकर यहाँ (मेरठ) के डॉक्टर बाबू का पता देते हुए एक पत्र लिखा। यहाँ पहुँचते ही इन लोगों ने मुझे अत्यन्त यत्नपूर्वक रखा है। ये (चन्दननगर के) एक कुशल एलोपैथी चिकित्सक हैं। इनके परीक्षण से पता चला कि हृदय की गति बहुत अधिक है। बोले – इस अवस्था में पर्वत पर जाने से व्याधि के स्थायी हो जाने की सम्भावना है। कुछ दिनों तक मैदानी अंचल में रहकर नियमित रूप से चिकित्सा तथा उपयुक्त आहार का सेवन आवश्यक है। अतएव आपसे प्रार्थना है कि आप किसी को भी हम लोगों का समाचार नहीं देंगे। जैसा अज्ञात रूप से (पहले) था, वैसे ही रहने देंगे। देखिये, इस बात को भूलिएगा मत।

"इस समय वैसी शारीरिक स्वच्छन्दता नहीं रह गयी है। पुष्टिकर भोजन तथा नियमित रूप से दवा का सेवन करते हुए कुछ दिन समतल प्रदेश में रहना होगा। अत: आपके कोई परिचित मित्र या सम्बन्धी यदि बम्बई या कहीं समुद्रतट पर रहते हों, तो मुझे अवश्य वहाँ भेज दीजिएगा।

"ऐसा होने पर मैं इस वर्ष के जाड़े में स्थिर होकर उसी अंचल में रहूँगा। हिमालय में इस बार क्या ही दुर्गति हुई! यदि इन कुछ महीनों में समुद्रतट की जलवायु से शरीर की व्याधियाँ दूर हो जायँ, तो फिर प्रभु ही जानते हैं कि क्या होगा। महाशय, मेरी पहाड़ों में भ्रमण करने की इच्छा नहीं थी। परन्तु इस बार हिमालय ने कहीं बैठने भी नहीं दिया।

सीने में थोड़ा-थोड़ा दर्द होता रहता है।

"आपको मेरे असंख्य प्रणाम। केवल आपको ही कुछ व्यर्थ की बातें लिखकर कष्ट दिया। अपनी कुशलता का संवाद देकर आनन्दित करेंगे। मठ का समाचार ज्ञात हो, तो लिखेंगे। हमारा समाचार कहीं भी न पहुँचे। इति।

"इस प्रकार लिखने में यदि कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा करेंगे। – दासस्य दास गंगाधर।

"पता – अखण्डानन्द नाम देने के बाद द्वारा डॉ. टी.सी. घोष, असिस्टेंट सर्जन, मेरठ सिटी, लिखेंगे।"[५१]

अखण्डानन्द जी ने मेरठ से ही २० नवम्बर को अपने अगले पत्र में प्रमदाबाबू को लिखा, "कल शाम को आपका पत्र पाकर सारे समाचारों से अवगत हुआ। कल छठे दिन दिल्ली से यहाँ आया हूँ। इसीलिये विलम्ब हुआ। भारत-धर्म-महामण्डल का अधिवेशन अत्यन्त समारोह तथा उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। वहाँ की जलवायु अत्यन्त खराब है, इसलिये वहाँ अधिक समय रह नहीं सका। तथापि यदि समुद्र के तट पर जाना न हो, तो जाड़े के इन कुछ दिनों के लिये मेरी नीचे की ओर जाने की इच्छा नहीं है, क्योंकि गर्मी तथा वर्षा के दिनों में ठण्डे स्थान में रहने की इच्छा है। चिकित्सकों की भी यही राय है।

"यहाँ मैं जिनके आश्रय में ठहरा हुआ हूँ, ये अत्यन्त सज्जन तथा चिकित्सा-शास्त्र में निपुण हैं। ये कई भाई बड़े सहृदय तथा उदार स्वभाव के हैं। मेरी देख-भाल तथा सेवा में कोई भी भूल नहीं करते। बड़े प्रेम से रखा है। अत: अब मैं नीचे की ओर जाने का विचार छोड़ दिया हूँ। काशी, इलाहाबाद आदि स्थानों की अपेक्षा यहाँ की जलवायु उत्तम तथा स्वास्थ्यवर्धक है।

"देहरादून से मैं अकेला हूँ। उसके बाद से उन लोगों का समाचार मैं नहीं जानता और वे लोग भी मेरे समाचार से अवगत नहीं हैं। वे लोग जानते थे कि मैं प्रयाग जाऊँगा, परन्तु बीच में जो कुछ हुआ, उसे वे नहीं जानते। इस समय वे लोग ऋषिकेश में हैं या कहीं अन्यत्र गये हैं और उन लोगों की क्या योजना है, इस विषय में मैं कुछ भी नहीं कह सकूँगा। उनकी (भाई नरेन्द्र स्वामी) कुछ समय पहाड़ में बैठने की तीव्र आकांक्षा थी। परन्तु मैं समझता हूँ कि इस दास का शारीरिक विघ्न ही नीचे उतरने का कारण बना।

"मेरी शारीरिक अवस्था ठीक नहीं है। औषधि, टॉनिक के नियमित सेवन तथा स्नान के विषय में बड़ा सावधान हूँ। आप सभी मेरा प्रणाम स्वीकार करेंगे। इति – दासस्य दास गंगाधर।

"पुनश्च – मुझे सबका समाचार देकर सुखी करेंगे। कृपा करके इस दास को कुछ उपदेश देंगे। सचमुच ही भुलाएँगे नहीं। ऋषिकेश में उन लोगों को पत्र आदि के द्वारा कोई उद्विग्न न करे। शिवानन्द स्वामी जहाँ रहते हैं, यह पत्र उन्हें मेरे पते के साथ भेज देंगे। बीच में दिल्ली जाकर स्वास्थ्य थोड़ा बिगड़ गया है।"[५२]

उपरोक्त पत्र के साथ स्वामी शिवानन्द जी को लिखा हुआ पत्र इस प्रकार है – "महापुरुषाय नमो नम:, आप लोगों का समाचार पाकर सुखी हुआ। ५-६ दिनों के लिये दिल्ली गया था, अत: पत्र देने में विलम्ब हुआ। दिल्ली की जलवायु बड़ी खराब है। वहाँ ५-६ दिन रहने से ही मेरे स्वास्थ्य में गिरावट आ गयी है। 'चिर दिन जात न एक समान' – यह अवस्था ही सत्य है, अत: कुछ कहा नहीं जा सकता। पिछले पत्र से आपको सारी जानकारी मिल गयी है। अब अधिक क्या लिखूँ ! इस समय और कोई बात तो नहीं है, केवल स्वच्छन्द रूप से विचरण नहीं कर पा रहा हूँ, परन्तु अधिक स्वच्छन्दता ही इस अस्वच्छन्दता का कारण है। उन सब स्थानों की अपेक्षा इस स्थान की जलवायु अधिक स्वास्थ्यकर लग रही है, अत: थोड़े दिन यहाँ रहकर देखूँगा। मैं जिनके आश्रय में हूँ, वे अत्यन्त उदार तथा हृदयवान हैं। देहरादून से मैं पं. आनन्द नारायण की सहायता से सहारनपुर होते हुए यहाँ आया। (वहाँ के) वकील बाबू बंकूबिहारी चट्टोपाध्याय आपके विशेष परिचित हैं। उन्होंने मुझसे यहाँ रहने का अनुरोध करते हुए यहाँ के बाबू को पत्र लिखा और स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से इलाहाबाद की बड़ी निन्दा की। अन्यथा मैं इलाहाबाद पहुँच गया होता। सान्याल (कृपानन्द) ऋषिकेश से देहरादून चले गये। इस समय मेरी सेवा के लिये किसी की जरूरत नहीं है। ये लोग देखभाल में कोई भूल नहीं करते। विशेष यत्नपूर्वक रखा है। यहाँ पर मैं शय्याग्रस्त तो नहीं हूँ। परन्तु गृहस्थ के घर में कुछ अधिक दिन हो रहे हैं। अत: क्या करूँ, रोग घटने से यह सार्थक होगा। इस वर्ष का जाड़ा बीत जाने के बाद हिमालय जाने में चिकित्सकों को कोई आपत्ति नहीं है। अपना सारा समाचार देकर सुखी करेंगे। शीघ्र पत्र देकर सुखी करेंगे। – दास गंगाधर। पुनश्च – आपका दक्षिण की ओर जाना क्यों नहीं हुआ? मैं देहरादून से ही दवा (टॉनिक) पी रहा हूँ। मेरा असंख्य प्रणाम लेंगे और सबको देंगे।"[५३] **(क्रमशः)**

---

४९. युगनायक विवेकानन्द, खण्ड १, पृ. २५१; **५०.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ९, सं. १९६३, पृ. १५७-५८मेरठ का सम्मिलन; **५१.** शरणागति ओ सेवा (बँगला), सं. १९९६, पृ. ६५-६७; **५२.** शरणागति ओ सेवा (बँगला), सं. १९९६, पृ. ६८-६९; **५३.** शरणागति ओ सेवा (बँगला), सं. १९९६, पृ. ६९

१२ जनवरी

राष्ट्रीय युवा दिवस

स्वदेश-मंत्र

हे भारत ! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं; मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं; मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिये, अपने व्यक्तिगत सुख के लिये नहीं है, मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिये बलिस्वरूप रखे गये हो, मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है, तुम मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, मोची और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं । हे वीर ! साहस का आश्रय लो । गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं, तुम भी कटिमात्र वस्त्रावृत होकर गर्व से पुकार कर कहो कि भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरे यौवन का उपवन और मेरे बुढ़ापे की वाराणसी है । भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है और रात-दिन प्रार्थना करते रहो - 'हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे ! मुझे मनुष्यत्व दो, माँ मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बना दो !'

स्वामी विवेकानन्द और उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ चित्र

स्वामी विवेकानन्द समाधि-मन्दिर, बेलूड़ मठ

स्वामी विवेकानन्द का जन्म-स्थान, कोलकाता

स्वामी विवेकानन्द का कमरा, बेलूड़ मठ
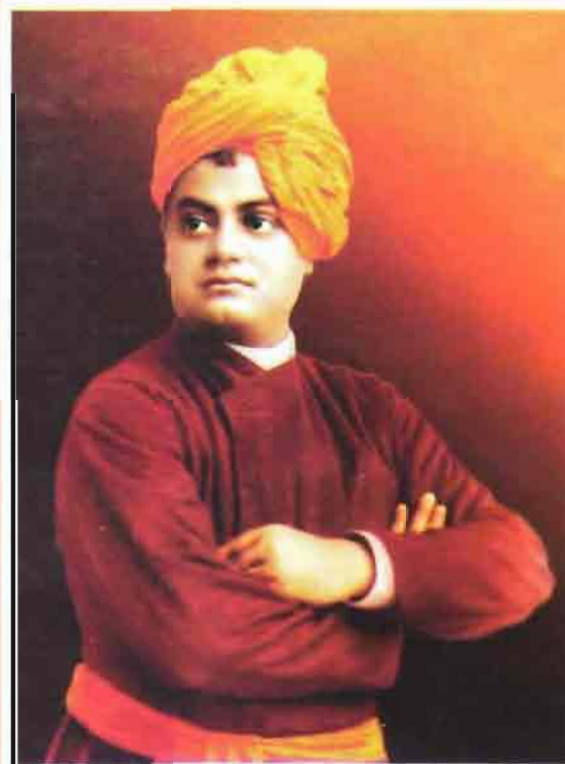
मायावती (उत्तराखण्ड)

विवेकानन्दर इल्लम्, चेन्नई

बेलगाम (कर्नाटक)

थाऊजंड आयलैण्ड पार्क (सहस्रद्वीपोद्यान), अमेरिका

आर्ट इन्स्टिट्यूट, शिकागो, अमेरिका

स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों का
युवक ऐसा हो !

मुखमण्डल तेजस्वी हो !
वाणी ओजस्वी हो !
शरीर में शक्ति हो !
मन में उत्साह हो !
सद्बुद्धि और विवेक हो !
हृदय में करुणा हो !
मातृभूमि पर प्रेम हो !
इन्द्रियों पर संयम हो !
मन जिसका स्थिर हो !
आत्मविश्वास दृढ़ हो !
इच्छाशक्ति प्रबल हो !
साहसी शूरवीर हो !
सिंह जैसा निर्भय हो !
लक्ष्य जिसका ऊँचा हो !
सत्य जिसका ईश्वर हो !
व्यसनों से मुक्त हो !
जीवन में अनुशासन हो !
मधुर प्रेममयी वाणी हो !
सम्पूर्ण जगत कुटुम्ब हो !
गुरुजनों पर सम्मान हो !
माता-पिता पर श्रद्धा हो !
मानवीय संवेदना हो !
दीन-दुखियों का मित्र हो !
सेवा में सदा तत्पर हो !
ईश्वर में भक्ति हो !
अचल देशभक्ति हो !
जीवन पूर्ण नैतिक हो !
चरित्र जिसका शुद्ध हो !

उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ । सब उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर लो ।
यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो । – स्वामी विवेकानन्द

विश्वव्यापी रामकृष्ण मिशन के बिहार स्थित आश्रमों के चित्र
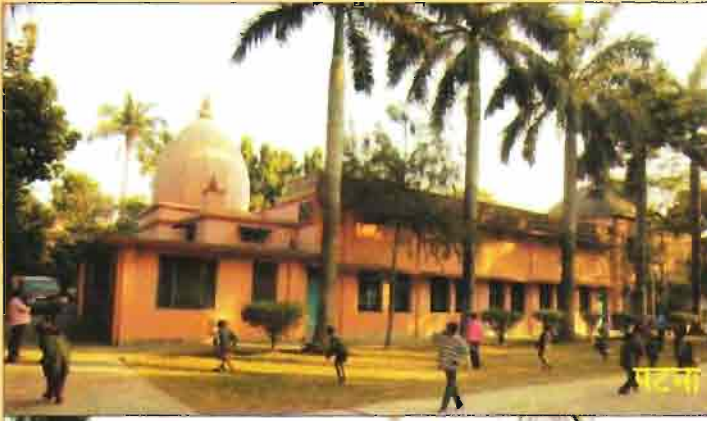
विभिन्न स्थानों में आयोजित कार्यक्रमों की झाँकी

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में महासचिव महाराज

लखौली (रायपुर), जगराता में सन्तवृन्द एवं विधायक

माना बस्ती, हाईस्कूल में स्वामीजी का रथ

गदाधर प्रकल्प में स्वामी सत्यरूपानन्द जी

आवरण-पृष्ठ और चित्र-संयोजन : ब्रह्मचारी बोधमयचैतन्य

स्वामी विवेकानन्द की प्रासंगिकता

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

(डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के सचिव और छत्तीसगढ़ निजी विश्वविद्यालय विनियामक आयोग के अध्यक्ष हैं। वे ओजस्वी वक्ता, लेखक, कर्मयोगी और कुशल प्रशासक हैं। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा आयोजित स्वामी विवेकानन्द जयन्ती समारोह के अवसर पर १३-१-२०१४ को मुख्य अतिथि के रूप में उन्होंने जो सारगर्भित व्याख्यान दिया था, उसे 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। इसका सीडी से अनुलिखन रायपुर की सुश्री क्षिप्रा वर्मा ने किया है।) (गतांक से आगे)

अन्त में वह परिव्राजक संन्यासी कन्याकुमारी के शिलाखण्ड में जाकर तीन दिन और तीन रात ध्यान करता है। ध्यान की विषय वस्तु थी भारत। भारत का वर्तमान, भूत और भविष्य उनकी आँखों के सम्मुख स्पष्ट हो गया था। शताब्दियाँ उनके नजरों के सामने बीत गयीं। स्वामीजी सोचने लगे कि भारत के पतन का कारण क्या है?

क्या धर्म भारत के पतन का कारण है? स्वामीजी को लगा कि धर्म भारत के पतन का कारण नहीं है। धर्ममय जीवन व्यतीत न करना ही भारत के पतन का कारण है। स्वामीजी ने देखा कि त्याग और सेवा का आदर्श हमारे जीवन से दूर हो गया है। इस त्याग और सेवा के आदर्श को जीवन में गतिशील बनाना होगा। तभी राष्ट्र की समस्यायें दूर होंगी। उसी शिलाखण्ड पर बैठकर स्वामीजी त्याग और सेवा के उस महान राष्ट्रीय आदर्श को पुन: एक बार राष्ट्रीय जीवन में गतिशील करने का दृढ़ संकल्प लेते हैं। यही कारण है कि **कन्याकुमारी के उस शिलाखण्ड का राष्ट्रीय चेतना के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि युगों-युगों से प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न भारत की राष्ट्रीय चेतना उसी शिलाखंड पर बैठे हुए स्वामी विवेकानन्द के अनन्त विस्तारित और अनन्त संवेदनशील हृदय में एक बार फिर से जाग उठती है और 'आत्मद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द' इसी शिलाखण्ड पर बैठे-बैठे 'राष्ट्रद्रष्टा विवेकानन्द' बन जाते हैं**। वे तो आत्मद्रष्टा होना चाहते थे। मैंने आपको दृष्टान्त दिया कि कैसे वे ठाकुर से निर्विकल्प समाधि की याचना कर रहे थे। इस शिला पर वे आत्मद्रष्टा से राष्ट्रद्रष्टा हो जाते हैं। यहीं से उनका जीवन सर्वतोभावेन समाज की सेवा में समर्पित हो जाता है। यहाँ के भूखे-नंगे स्वामीजी के विशेष सेव्य हो जाते हैं। समाधि का आनन्द स्वामीजी के लिये गौण हो जाता है और भूखे, नंगों की सेवा उनके लिये ईश्वर की पूजा हो जाती है। तब स्वामीजी कहते हैं कि यदि भूखे के पास धर्म ले जाना है, तो रोटी के रूप में ले जाओ। नंगों के पास धर्म ले जाना है, तो वस्त्र के रूप में ले जाओ। बीमार के पास धर्म ले जाना है, तो औषधि के रूप में ले जाओ। मनुष्य ही सबसे बड़ा ईश्वर है। मनुष्य से बड़ा कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। वे कहते थे, "तुम ईश्वर को खोजने कहाँ जाते हो, क्या गरीब अनाथ और निर्बल ईश्वर नहीं हैं? पहले इन्हीं की पूजा क्यों नहीं करते ? गंगा-किनारे बैठकर कुँआ क्यों खोदते हो?" स्वामीजी ने एक बहुत सुन्दर कविता लिखी है -

ब्रह्म और परमाणु जीव तक, सब भूतों का है आधार,
एक प्रेम में प्रिय इन सबके, चरणों में दो तन-मन वार।
बहुरूपों में खड़े तुम्हारे, आगे और कहाँ हैं ईश।
व्यर्थ खोज यह जीव प्रेम की, सेवा ही पाते जगदीश।।

मनुष्य ही सबसे बड़ा ईश्वर है। इसीलिये स्वामीजी ने कहा कि मैं चाहता हूँ कि बार-बार जन्म लूँ, हजारों यातनाओं को सहन करूँ, ताकि मैं उस ईश्वर की उपासना कर सकूँ, जिसे मैं अस्तित्ववान मानता हूँ, जिसका अस्तित्व है, जो सभी आत्माओं का योग है। अब मुक्ति की वे कामना नहीं करते । बार-बार जन्म लेना चाहते हैं, क्योंकि श्रीरामकृष्ण देव का वह सन्देश स्वामीजी को निरन्तर परिचालित किये हुये है।

कभी किसी ऋषि को अनुभूति हुई होगी। ऋषि प्रार्थना करते हैं -

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

मैं राज्य की कामना नहीं करता, स्वर्ग की कामना नहीं करता, पुनर्जन्म की कामना नहीं करता। मैं कामना करता हूँ कि दुख के ताप से तप्त लोगों के दुख को निरन्तर दूर करता रहूँ।

ऋषि की वही अनुभूति आज स्वामी विवेकानन्द के हृदय में फिर प्रज्वलित हो रही है। वे भी मुक्ति की कामना नहीं करते। वे भी बार-बार जन्म लेना चाहते हैं। उनके मुख से भी वही बात मैसूर के राजा को लिखे पत्र में नि:सृत होती है। स्वामीजी लिखते हैं – "मेरे महान् राजन्! जीवन क्षणिक है और संसार के उपादान क्षणभंगुर हैं, केवल वे ही जीते हैं, जो दूसरों के लिये जीते हैं। बाकी शेष तो जीवित के अपेक्षा मृत अधिक हैं।" स्वामीजी के इस सन्देश को यदि हम अपने जीवन में उतारें, तो देखेंगे कि राष्ट्र और विश्व की सारी समस्यायें दूर हो जायेंगी। यदि हम मनुष्य की महिमा को समझें, तो फिर हमसे किसी प्रकार का अपराध नहीं होगा। सारे अपराध तो इसीलिये होते हैं कि हम केवल अपनी महिमा को समझते हैं, दूसरों के महत्व को नहीं समझतें। हम अपनी महिमा की प्रतिष्ठा के लिए दूसरों के महत्व को नकार देना चाहते

हैं। आप विचार करके देखें, तो हमारी सारी समस्याओं का मूल है कि हमने केवल अपने को महत्व दिया है। हमारे जीवन में स्वार्थ बुद्धि है, परार्थ बुद्धि नहीं है। एक बार यदि हमारे जीवन में परोपकार की वृत्ति आ जाये, मनुष्य को महत्व देने की वृत्ति आ जाये तो जीवन की सारी समस्याओं का समाधान हो जायेगा। यह स्वामी विवेकानन्द के जीवन की सबसे बड़ी प्रासंगिकता है।

अन्तिम बात मैं स्वामीजी की देशभक्ति के सम्बन्ध में कहना चाहूँगा। जब भी मुझे मौका मिलता है मैं स्वामीजी की देशभक्ति की चर्चा करना बड़ा पसन्द करता हूँ। उनकी देशभक्ति बड़ी अद्‌भुत थी ! बहुत से देशभक्त हुये। सबने अपनी-अपनी देशभक्ति को प्रकट किया। पर स्वामीजी की देशभक्ति तो बड़ी विलक्षण है ! आजकल तो देशभक्त होने की होड़ लगी हुई है। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी अपने को देशभक्त कहती है और दूसरे को देशद्रोही कहती है। बहुत-सी सामाजिक संस्थायें, राष्ट्रीय संस्थायें अपने को देशभक्त बताती हैं तथा दूसरे देशभक्त नहीं हैं, ऐसा कहती हैं। पर स्वामीजी ने देशभक्ति की परिभाषा दी। उनकी देशभक्ति यथार्थ देशभक्ति है। उस समय तो देश परतन्त्र था, तब स्वामीजी ने देशभक्ति का एक आदर्श रखा था। स्वामीजी ने कहा था – 'आगामी पचास वर्षों के लिये हमारी एक मात्र आराध्य देवी हमारी महान मातृभूमि भारतमाता होंगी। दूसरे सभी देवी-देवताओं को तब तक के लिये भूल जाओ। एकमात्र भारतमाता ही हमारी ईष्ट हों, एकमेव आराध्य हों, हमें इन्हीं की पूजा करनी है। अन्य सभी देवी-देवताओं को भूल जाओ। हम उस देवी-देवताओं की पूजा करें, जिसके हर जगह हाथ हैं, हर जगह पैर हैं, हर जगह कान हैं। जब हम इस देवता की पूजा करेंगे, तब हम वास्तव में सही देशभक्त हो पायेंगे। देश का जो अन्तिम व्यक्ति है, वह स्वामीजी के लिये सबसे बड़ा ईश्वर और उपास्य था। वे धन, ज्ञान और विद्या के वितरण में समान अधिकार देने के पक्षपाती थे। वे बारम्बार हमको चेतावनी देते रहे, स्मरण दिलाते रहे कि भूलना नहीं कि तुम्हारा राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है। किसी भी गरीब के अधिकार का हनन मत करो। यह उन लोगों का कार्य है, जो अपने आपको उच्च वर्ग का कहते हैं। स्वामीजी ने कहा कि यदि मजदूर, श्रमिक काम करना बन्द कर दें, तो तुमको अन्न-वस्त्र मिलना बन्द हो जायेगा। तुम उन्हें नीच जाति का व्यक्ति मानते हो और अपनी संस्कृति की शेखी बघारते हो। जीवन-संग्राम में व्यस्त रहने के कारण उन लोगों को अपनी बुद्धि के विकास का अवसर नहीं मिला, ज्ञानार्जन का अवसर नहीं मिला। पर अब जमाना बदल गया है। लोग जाग रहे हैं। जन-साधारण जब जागेंगे और तुम्हारे द्वारा अपने प्रति किये गये अत्याचारों को जानेंगे, तो उनकी एक फूँक से ही तुम लोग उड़ जाओगे। उन्हीं लोगों ने तुममें तुम्हारी सभ्यता का प्रवेश कराया है और वे ही तुम्हारी सभ्यता को समाप्त करने वाले होंगे। इसलिये मैं कहता हूँ कि निम्न जाति के व्यक्तियों को जगाओ। उनको संस्कृति प्रदान करो। उनको शिक्षा दो। जब वे जागेंगे और वे एक दिन अवश्य जागेगें, तब तुम्हारे द्वारा अपने प्रति की गई हितकारी सेवा से कृतज्ञ रहेंगे। स्वामीजी ने कहा था – एक नवीन भारत का उदय हो। उस नवीन भारत का उदय हो हल चलाने वाले किसानों की कुटिया से; मोचियों, मेहतरों और मजदूरों की झोपड़ियों से; उस नवीन भारत का उदय हो पर्वतों, पहाड़ों और जंगलों से। समाज के अन्तिम व्यक्ति की चिन्ता स्वामीजी को थी, जो आज किसी देश के नेताओं को नहीं है। सब अपनी तिजोरियाँ भरने में व्यस्त हैं। किन्तु स्वामीजी थे, जो सबसे छोटे व्यक्ति की पीड़ा को समझते थे और उसके उत्थान की बात करते थे। उनका जितना समाजवादी चिन्तन है, उनका जितना राजनैतिक चिन्तन है, वह इसी विचारधारा पर केन्द्रित है कि कैसे गरीब वर्ग का उत्थान हो?

इनके लिये स्वामीजी रुदन भी करते थे। अमेरिका में जब उन्हें तरह-तरह की सुख और ऐश्वर्य की सामग्रियाँ उपलब्ध थीं, वहाँ स्वामीजी बेचैन हो गये, मखमली गद्दों में स्वामीजी को नींद नहीं आयी। देश की दुर्दशा का विचार करते हुये उनकी आँखों के आँसुओं से गद्दे भीग जाते थे। ऐसे थे स्वामीजी जो गरीबों के लिये जीते थे। इसीलिये स्वामीजी ने कहा था – "ऐ वीर ! साहस का अवलम्बन लो, गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ, प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है । अनाथ भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, चमार भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सब मेरे भाई हैं। भारतवासी मेरे प्राण हैं। भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं। भारत का समाज मेरा बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है। भाई कहो कि भारत की मिट्टी मेरा सर्वोच्च स्वर्ग है। भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है।" ऐसे महान राष्ट्रवादी चिन्तक थे स्वामी विवेकानन्द !

मैं परम पूज्य स्वामी सत्यरूपानन्द जी का बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने ऐसा अवसर मुझे यहाँ प्रदान किया। उनका निर्देश था कि मैं यहाँ आपके बीच उपस्थित होऊँ और कुछ बातें स्वामी विवेकानन्द के बारे में आपसे कहूँ। उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैंने कुछ बातें कही। आप सबने मेरी बातों को धैर्य से सुना, इसके लिये आप सबको धन्यवाद।

○○○ **समाप्त**

स्वामी विवेकानन्द और सर्वधर्म-समभाव

डॉ. सच्चिदानन्द जोशी
कुलपति, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

आज से एक सौ इक्कीस वर्ष पूर्व ९ सितम्बर, १८९३ के दिन शिकागो की धर्म-महासभा में अपने स्वागत के उत्तर में दिये गये सम्बोधन का प्रारम्भ स्वामी विवेकानन्द ने 'अमेरिकावासी बहनों तथा भाइयों' शब्द से किया था। अपने सम्बोधन मात्र से उन्होंने विश्व-बन्धुत्व और सहिष्णुता की जो महत्वपूर्ण शिक्षा सम्पूर्ण विश्व को दी थी, वह आज भी शाश्वत, चिरन्तन और ऐतिहासिक है। वह सम्बोधन एक ऐसा सम्बोधन था, जिसके उच्चारण मात्र से समूचा धर्मप्रेमी समुदाय द्रवित हो गया और भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के एक नये रूप में साक्षात्कार के लिये प्रेरित हो गया।

अपने उसी ऐतिहासिक सम्बोधन में उन्होंने कहा, "मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं।" अपने सम्बोधन में उन्होंने 'महिम्नस्तोत्र' के श्लोक का उल्लेख किया –

रुचीनां वैचित्र्याद्‌ऋजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।।

अर्थात्, जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

उस धर्मसभा को समभाव और बन्धुत्व का सर्वश्रेष्ठ सम्मेलन निरूपित करते हुए वे गीता के उद्देश्य को उद्धृत करते हैं,

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

अर्थात्, जो कोई मेरी ओर आता है चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ही ओर आते हैं।

इसी धर्म-महासभा के अन्तिम सत्र में २७ सितम्बर को अपने भाषण में सभी धर्मों के प्रति आदर और निष्ठा का भाव रखते हुए स्वामीजी ने कहा था, "ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिये और न ही हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ, प्रत्येक को चाहिये कि वह दूसरों के सार भाग को आत्मसात् करके पुष्टिलाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपना विकास करे। इस धर्म-महासभा ने जगत के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह कि उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र के स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है।"

उन्होंने केवल अपने धर्म की विजय और श्रेष्ठता के तथा अन्य धर्मों के नाश का स्वप्न देखने वालों को बहुत ही कड़े और कठोर शब्दों में समझाईश देते हुए "समन्वय और शान्ति न कि मतभेद और कलह"; "परभाव ग्रहण, न कि परभाव विनाश" का सन्देश दिया।

हम सभी जानते हैं कि स्वामीजी धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे एवं उन्हें स्वयं हिन्दू होने पर गर्व था। वे हिन्दू धर्म की सहिष्णुता और औदार्य के महान उपासक थे। परन्तु इसके साथ ही अन्य धर्मों के प्रति उनके मन में जो आदर भाव था, वह अतुलनीय था।

स्वामीजी ने धर्म-महासभा में १९ सितम्बर, १८९३ को हिन्दू धर्म की विस्तार से व्याख्या की और समूचे विश्व के सामने हिन्दू धर्म के वास्तविक दर्शन को रखा। इस निबन्ध के समापन में स्वामीजी ने कहा, "यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होता है, तो वह किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा। वह उस असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा, जो न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई और न इस्लाम, वरन् इन सबकी समष्टि होगा। वह धर्म ऐसा होगा, जिसकी नीति में उत्पीड़न या असहिष्णुता का स्थान नहीं होगा। वह प्रत्येक स्त्री और पुरुष में दिव्यता को स्वीकार करेगा।"

स्वामीजी का सार्वभौमिक धर्म का यह चिन्तन उनके सभी धर्मों के गहरे अध्ययन, चिन्तन और मनन के बाद ही उपजा प्रतीत होता है। स्वामीजी ने बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म, सभी पर गहन अध्ययन कर अपने विचार सार्वजनिक रूप से रखे। उन विचारों में बेबाकी थी, निडरता थी और सीख भी थी। स्वामीजी के दूसरे धर्मों के प्रति आदर भाव और उन धर्मों के बारे में चिन्तन का ही प्रभाव था कि उनके बेबाक वचनों को कभी किसी ने गलत सन्दर्भ में नहीं लिया और उनका सम्मान बढ़ता ही गया। उनकी विभिन्न धर्मों की व्याख्या किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं थी। बल्कि उन धर्मों के सम्यक् अध्ययन तथा युक्तियुक्तकरण विवेचन से उपजी व्याख्या थी। इसीलिये सभी धर्मानुयायी उनका आदर करते थे।

अपने भाषण दिनांक २६ सितम्बर, १८९३, 'बौद्ध धर्म : हिन्दु धर्म की निष्पत्ति' की शुरुआत में ही वे कहते हैं, "मैं बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं हूँ, जैसा आप लोगों ने सुना है, फिर भी

मैं बौद्ध हूँ। क्योंकि भारतवर्ष में बुद्ध को ईश्वर का अवतार मानकर हम उनकी पूजा करते हैं। मैं बौद्ध धर्म की आलोचना नहीं करता पर उनके शिष्यों ने उनकी शिक्षाओं को ठीक-ठीक नहीं समझा है।'' ईसाई धर्म-गुरुओं के धम-परिवर्तन के प्रति बुरी तरह ताना देते हुए वे कहते हैं, ''धर्म भारत की प्रधान आवश्यकता नहीं है, भारत के लोगों की आवश्यकता है रोटी। मैं यहाँ पर अपने दरिद्र भाइयों के निमित्त सहायता माँगने आया था, पर मैं पूरी तरह समझ गया हूँ कि मूर्तिपूजकों के लिये ईसाईयों से, विशेषकर उन्हीं के देश में सहायता प्राप्त करना कितना कठिन है।'' अपने जीवन यापन हेतु प्राप्त सामान्य लाभ के लिये धर्म परिवर्तन को वे हेय मानते थे, इसलिये उन्होंने कभी धर्म परिवर्तन का समर्थन नहीं किया।

२९ अक्तूबर, १८९४ को वाशिंगटन पोस्ट में ''सभी धर्म अच्छे हैं'' शीर्षक से छपे समाचार में स्वामीजी का कथन उनकी समभाव की दृष्टि को और अधिक स्पष्ट करता है, ''मैं किसी धार्मिक संघ से सम्बन्धित होने का दावा नहीं करता, वरन् मेरी स्थिति एक दर्शक की और यथासम्भव मानव जाति के एक शिक्षक की है। मेरे लिये सभी धर्म अच्छे हैं।'' स्वामीजी का यह कथन मात्र शब्दोच्चारण की वाणी नहीं थी, बल्कि वे आचरण में भी इसे लाने का प्रयास करते थे।

२५ मार्च, १९०० को सैनफ्रान्सिस्को के क्षेत्र में दिये गये व्याख्यान 'मुहम्मद' में स्वामीजी ने समभाव की बहुत ही सुन्दर अवधारणा प्रस्तुत की है। वे कहते हैं, ''कृष्ण के प्राचीन सन्देश में बुद्ध, ईसा और मुहम्मद तीनों के सन्देशों का समन्वय है। तीनों में से प्रत्येक ने एक समभाव लिया और उसे चरम तक पहुँचा दिया। कृष्ण अन्य सभी पैगम्बरों के पूर्ववर्ती हैं।'' अपने व्याख्यान में वे मुहम्मद के उपदेशों की तथा इस्लाम धर्म की सविस्तार और सादर व्याख्या करते हैं। स्वामीजी के इस कथन के सौ से भी अधिक वर्ष बीत जाने के बाद भी दर्शन-शास्त्रियों तथा समाज-शास्त्रियों ने सही विवेचन नहीं किया है।

धार्मिक समरसता का यही भाव वे ''ईशदूत ईसा'' नामक व्याख्यान में ईसा के प्रति दिखाते हैं, जो उन्होंने सन् १९०० में लॉस एंजिल्स में दिया था। सैनफ्रान्सिस्को में १८ मार्च, १९०० को दिये गये व्याख्यान, 'संसार को बुद्ध का सन्देश में' वे बुद्ध और बौद्ध धर्म की महानता का दर्शन करते हैं।

स्वामीजी के साहित्य का अध्ययन करने पर हम ऐसे अनेकों उदाहरण देख सकते हैं, जिसमें उन्होंने संसार के विभिन्न धर्मों की व्याख्या की है तथा उस धर्म के प्रवर्तकों अथवा गुरुओं के दर्शन को समाज के सामने रखा है। इन सबमें स्वामीजी का आग्रह धर्म के कर्म को पकड़ने की बजाय धर्म के मर्म को समझाने का रहा है। उनके अनुसार धर्म के दो भाग हैं – कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्ड का विशेष अध्ययन संन्यासी लोग करते हैं। वे जिस कालखण्ड में इन बातों को समाज में रख रहे थे उसके अनुसार उनका चिन्तन क्रान्तिकारी और युगान्तरकारी था। इसमें उनके समाज से निर्वासित होने का खतरा था। क्योंकि विभिन्न धर्मों के कर्मकाण्डी गुरुओं को उनके विचार कैसे पच सकते थे। किन्तु स्वामीजी का चिन्तन निस्वार्थ और समाज के लिये हितकारी था और वे समाज के प्रत्येक व्यक्ति से सीधा संवाद स्थापित करते थे, इसलिये वे सर्वोच्च शिखर पर आसीन हुए।

स्वामीजी के चिन्तन की यह विशेषता थी कि आलोचना के दौरान भी उनकी उस धर्म के प्रति आदर और आस्था में कभी कोई कमी दिखाई नहीं दी। इसलिये वे सभी के लिये ग्राह्य और स्वीकृत थे। उनका आग्रह था कि विभिन्न धर्म अपनी क्षुद्र सीमाओं को तोड़कर व्यापक वैचारिक और आध्यात्मिक सुरसरि में तैरें।

वे सही अर्थों में एक सच्चे राष्ट्रभक्त, धर्मनिष्ठ और मानवतावादी संन्यासी थे। संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा का प्रतिनिधि होने पर उन्हें गर्व था। हम उनके वचनों को याद करके अपने जीवन को समाज और मानवता के लिये उपयोगी बना सकते हैं तथा भावी जीवन के लिये प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। वे विश्व-बन्धुत्व के आधुनिक प्रणेता थे तथा वैश्विक नागरिक की अवधारणा के संस्थापक थे। सभी धर्म का समान आदर करने वाले परन्तु सभी धर्मों में बढ़ रहे पाखण्ड की खुलकर आलोचना करने वाले वे एक ऐसे संन्यासी थे, जिनका मानना था कि धर्म मानवता के लिये बना है, मानवता धर्म के लिये नहीं। इसलिये उनकी दृष्टि में मानव-धर्म सर्वोपरि था।

अर्थशास्त्र में कहते हैं कि खराब पैसा अच्छे पैसे को बाहर कर देता है। मीडिया में हम देखते हैं कि खराब खबर अच्छी खबर को बाहर कर देती है, इसी तरह समाज में खराब विचार अच्छे विचार को बाहर कर देता है। हमारी सोच नकारात्मक विचार को ज्यादा स्थान देती है और भय की सृष्टि आनन्द की सृष्टि से कहीं अधिक आसानी से तथा कम समय में होती है। आज समाज को ११ सितम्बर की ट्विन टावर, अमेरिका की दुर्दान्त आतंकवादी घटना तो याद है, पर विश्व-बन्धुत्व का सन्देश देने वाला स्वामीजी का भाषण विस्मृत हो गया है। यह भी विडम्बना ही है कि वर्षों बाद समूचे विश्व को धर्म के आधार पर बाँटने वाली और धर्म के आधार पर घृणा वैमनस्य फैलाने

वाली दुर्दान्त घटना भी उसी दिन हुई जिस दिन स्वामीजी ने समूचे विश्व को विश्व-बन्धुत्व का संदेश दिया था।

एक धर्म से दूसरे धर्म की लड़ाई और आपसी वैमनस्यता को भी काफी पीछे छोड़कर हम मनुष्य प्रजाति के लोग अब एक ही धर्म की अलग-अलग शाखाओं के बीच भी विभाजन की पराकाष्ठा में पहुँच गये हैं। धर्म जातियों में, शाखाओं में बँट गया है और अलग-अलग शाखाओं के बीच होने वाले संघर्ष एक-दूसरे का विनाश करने वाले हैं। तात्कालिकता में भले ही बाहुबल और आतंकवाद के जरिए कोई एक शाखा खतरे में हो सकती है, परन्तु ऐसी मनोवृत्ति से मानवता के ही नष्ट होने का खतरा है। धर्म को संस्कार, जीवन-पद्धति न मानकर उसे रूढ़ियों में बाँधने का जो क्रम पिछले कुछ वर्षों से चला है, लगता है अब हम उसके चरम की ओर बढ़ रहे हैं। हाल में वैश्विक परिदृश्य में जो घटनाएँ घटी हैं, वे तो इसी बात का संकेत दे रही हैं कि धार्मिक कट्टरता और रूढ़िवादिता के कारण वैश्विक शान्ति तथा मानवता खतरे में है।

११ सितम्बर को दिये गये भाषण का समापन स्वामीजी ने जिन शब्दों के साथ किया था वे शब्द पुन: पुन: स्मरण हो आते हैं। इसमें व्यक्त की गई चिन्तायें और पीड़ायें आज भी न केवल शाश्वत हैं, बल्कि बढ़ी ही हैं।

धन्यवाद ज्ञापित करते हुए अपने संक्षिप्त उद्बोधन का समापन वे इन शब्दों से करते हैं, "साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और बीभत्स वंशवाद धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज कर चुकी है, वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वंस करती और पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये बीभत्स दानवी न होती, तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घण्टा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार और लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु निनाद सिद्ध हो।"

स्वामीजी युगद्रष्टा थे और भविष्य पटल पर लिखी जाने वाली रचना को पढ़ने की उनमें अपार क्षमता थी। आज हम धार्मिक, साम्प्रदायिक वैमनस्य के जिस दावानल से होकर गुजर रहे हैं, उसके संकेत स्वामीजी के उपरोक्त कथन में देखने को मिलते हैं। हमारा परम सौभाग्य भी यही है कि स्वामीजी जैसा विराट व्यक्तित्व हमारे बीच अवतरित होकर गया है, जिसने परस्पर समभाव के श्रेष्ठतम वचनों से हमें अलंकृत किया है। स्वामीजी का स्मरण करके और उनके वचनों का अनुसरण करके हम इस वैमनस्य के वातावरण से मुक्त हो सकते हैं और सर्वधर्म-समभाव के आदर्श वातावरण को स्थापित कर सकते हैं। यही हमारी स्वामी विवेकानन्द जी के प्रति सच्ची आदरांजलि होगी। ○○○

युवकों के सर्वांगीण विकास में छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का योगदान

हिमाँचल मढ़रिया

निदेशक, गायत्री अस्पताल रायपुर और दुर्ग तथा संयोजक, मध्य प्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा

सन् १९६३ के मई महिने की बात है। रायपुर में रामकुंडपारा के सामने जी. ई. रोड के दक्षिण में, मुस्लिम लोगों का एक कब्रगाह था। मैं तब ९वीं कक्षा पास कर १०वीं कक्षा में पहुँचा था और आमापारा में अपने मामा के घर रहकर पढ़ता था। उसी समय मेरे बड़े भैया डॉ. कटराम मढ़रिया को पता लगा कि उस कब्रगाह के पास की जमीन पर स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने विवेकानन्द आश्रम की स्थापना की है और वहाँ एक विद्यार्थी भवन भी है, जिसमें स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियों के लिये रहने की व्यवस्था है। बड़े भैया ने सोचा कि वहाँ का परिवेश विद्या-अध्ययन के लिये अच्छा होगा, इसलिये मुझे वहाँ प्रवेश दिला दिया। वहाँ प्रवेश लेने वाले १० विद्यार्थियों में मेरा नाम था। १ जुलाई से स्कूल खुलने वाले थे, इसलिए ३० जून की शाम तक हम अधिकांश विद्यार्थी अपने सामान सहित आश्रम में उपस्थित हो गए और अपने लिये निर्धारित कमरों में रहने लगे।

सुबह ५ बजे से रात्रि १० बजे तक की नियमित दिनचर्या के बारे में हमें निर्देश मिल चुका था। सुबह ५ बजे मंगल आरती और शाम ६.३० बजे संध्या आरती हुआ करती थी। स्वामी आत्मानन्द जी महाराज स्वयं हारमोनियम बजाकर प्रार्थना गाया करते थे। स्वामी आत्मानन्दजी महाराज के सहयोगियों में थे देवेन्द्र भैया (स्वामी निखिलात्मानन्द), संतोष भैया (स्वामी सत्यरूपानन्द) एवं अशोक दा (स्वामी ब्रह्मेशानन्द)। सर्वप्रथम रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के जनक श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द का परिचय मन्दिर में

स्थापित उनके छायाचित्रों के माध्यम से ही हुआ। इन छायाचित्रों के समक्ष बैठकर हृदय से व्याकुल होकर प्रार्थना करते हुए स्वामी आत्मानन्द जी तथा उनके सहयोगियों के द्वारा उनकी महत्ता का भी बोध हुआ। रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के द्वारा युवकों के सर्वांगीण विकास के लिये ही 'विवेकानन्द विद्यार्थी भवन, रायपुर' का निर्माण हुआ था। यह छत्तीसगढ़ (उस समय के म.प्र.) की पहली संस्था थी, जो रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित थी। इसके पहले तक हम लोग रामकृष्ण-विवेकानन्द को बिल्कुल नहीं जानते थे।

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के अनुसार, युवकों के सर्वांगीण विकास के लिए निम्नलिखित बातों का समावेश अत्यन्त आवश्यक है –

१. स्वस्थ शरीर
२. स्कूल और कॉलेज की समुचित शिक्षा
३. चरित्र-निर्माण
४. आध्यात्मिक विकास
५. आर्थिक विकास
६. पारिवारिक विकास
७. सामाजिक विकास

१. स्वस्थ शरीर – स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि स्वस्थ मन के लिए स्वस्थ शरीर का होना अत्यन्त आवश्यक है। वे कहते थे कि गीता पढ़ने के पहले तुम फुटबाल खेलकर अपने शरीर को स्वस्थ और मजबूत बनाओ, तभी तुम गीता को अच्छी तरह से समझ पाओगे।

२. स्कूल और कॉलेज की समुचित शिक्षा – स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि मेरे एक भी भारतवासी भाई और बहन आशिक्षित न रहें सभी को शिक्षा का समान अधिकार है। हमारे देश में गरीबी की जड़ अशिक्षा है। शिक्षित भाई-बहन, एक शिक्षित समाज का निर्माण करेंगे और गरीबी हमारे देश से समूल नष्ट हो जायेगी।

३. चरित्र निर्माण - रोजगारोन्मुखी स्कूल और कालेज की शिक्षा के साथ-साथ चरित्र-निर्माण की शिक्षा भी अत्यन्त आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द उच्च चरित्र के स्वामी थे। उन्होंने कहा था कि यदि मुझे १०० चरित्रवान, निस्वार्थी, सेवाभावी युवक मिल जायँ, तो विश्व समुदाय का कायाकल्प किया जा सकता है। रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य, चरित्र निर्माणकारी शिक्षाओं से भरा हुआ है। रामकृष्ण मठ-मिशन के संन्यासी-ब्रह्मचारी, उच्च चरित्र के मूर्तिमान स्वरूप हैं, रामकृष्ण मठ-मिशन की शाखाओं में वे हमारे युवक-युवतियों के मार्गदर्शन के लिए सहज उपलब्ध हैं।

४. आध्यात्मिक विकास - साधारणतया लोग विकास की परिभाषा, भौतिक विकास से ही लगाया करते हैं, लेकिन भारतीय दर्शन हमें इससे भी आगे ले जाने की बात करता है। वह कहता है कि भौतिक विकास तो सर्वांगीण विकास का एक बहुत ही छोटा भाग है। इसका बहुत बड़ा भाग तो आध्यात्मिक विकास से ही पूर्ण हो सकता है। इसे उन्होंने जल में तैरते हुए हिमखण्ड से समझाने की कोशिश की। जल में तैरता हुआ हिमखण्ड का एक छोटा भाग ही बाहर दिखाई देता है, जो भौतिक विकास का द्योतक है और उसका बहुत बड़ा भाग जल के अन्दर रहता है, बाहर नहीं दिखता, वह आध्यात्मिक विकास का द्योतक है। यह हिमखण्ड की पूर्णता में उसका बहुत बड़ा भाग है। रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा, इस न दिखाई देने वाले आध्यात्मिक विकास के लिये पूर्णतः समर्पित है। इसके अनुसार ईश्वर-प्राप्ति ही इस जीवन का लक्ष्य है। अपने को जानो। जप-ध्यान के माध्यम से यह सम्भव है। चित्तशुद्धि के लिये त्याग और सेवा का आदर्श अपनाना होगा। 'शिव-भाव से जीव-सेवा' के द्वारा चित्तशुद्धि हो सकती है। रामकृष्ण संघ का रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य एवं ग्राम पंचायतों में स्वामी आत्मानन्द पुस्तकालय तथा 'विवेक ज्योति' द्वारा सरकारी स्तर पर चरित्र-निर्माण जारी है।

५. आर्थिक विकास – स्वामी विवेकानन्द ने समाज सुधारकों से कहा था कि भूखे-गरीब भारतवासी भाइयों को तुम धर्म मत सिखाओ। यदि उन्हें धर्म सिखाना चाहते हो, तो पहले उन्हें भरपेट भोजन कराओ, तब वे धर्म का पालन कर सकेंगे। अपने गरीब भारतवासी भाइयों और बहनों के लिये आर्थिक सहायता हेतु वे अमेरिका गये। वे कहते थे कि धर्म हमारे भारतवासी भाइयों और बहनों के रक्त में है। उन्हें धर्म सिखाने की आवश्यकता नहीं। उन्हें शिक्षित कर आर्थिक रूप से सम्पन्न करो, तो वे स्वयं धर्म का पालन करेंगे और समाज उन्नत होगा। अनेकों सरकारी योजनाओं और सेवा-प्रकल्पों के मूल प्रेरणास्रोत स्वामी आत्मानन्द जी महाराज हैं, जिन्होंने समय-समय पर भारत सरकार और राज्य सरकार को स्वामी विवेकानन्द जी के सेवापरक विचारों से अवगत कराया, जिससे आज छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश सब प्रकार से समृद्ध होकर देश के प्रमुख विकासशील राज्य में अग्रणी है।

६. पारिवारिक विकास – लोभ और स्वार्थ आज पारिवारिक संवेदनाओं को मटियामेट करते जा रहे हैं। त्याग और प्रेम तो आज दूर की बातें हो गई हैं, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा प्रायः लुप्त प्रतीत होती है। इस विषम परिवेश में भी रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृढ़ भावना से भरी हुई है। अपनी सुख-सुविधाओं को

तिलांजलि देकर रामकृष्ण मठ-मिशन के संन्यासी-ब्रह्मचारी, अपने भारतवासी भाइयों और बहनों की शिक्षा के लिए स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय संचालित कर रहे हैं, रोगियों हेतु अस्पताल चला रहे हैं तथा प्राकृतिक आपदा के समय उनके साथ रहकर उनके लिये हर सुविधा उपलब्ध कराने के लिये सदा तत्पर रहते हैं। इनके इस प्रयास से प्रत्येक सेवाप्राप्त व्यक्ति के मन में यह भाव आता है कि ये संन्यासी-ब्रह्मचारी उनके सगे भाई से भी बढ़कर हैं, उनका प्रेम, त्याग देखने लायक रहता है। क्या हमारे युवक और युवतियाँ इनसे प्रेरणा लेकर अपने पारिवारिक और सामाजिक विकास में योगदान देकर देश में एक मिसाल स्थापित कर धन्य नहीं होंगे?

७. सामाजिक विकास – भारत में विभिन्न जातियों, स्थानीय बोलियों में विभाजित स्थानों को परस्पर प्रेम सद्भावना से सबको एकता के सूत्र में बाँधने एवं स्वामी विवेकानन्द जी के द्वारा शिक्षा हेतु स्थानीय भाषाओं के महत्व की दृष्टि से छत्तीसगढ़ को राज्यभाषा घोषित कर सामाजिक राष्ट्रीय एकता लाने की मूलप्रेरणा रामकृष्ण-भावधारा ही है। रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से विकसित इन छः गुणों को धारण करने वाले युवक और युवतियाँ एक सुदृढ़ समाज की स्थापना करेंगे, जिसमें स्वस्थ शरीर और उच्च शिक्षित चरित्रवान युवक-युवतियाँ होंगे, जो आध्यात्मिक रूप से पूर्ण विकसित होंगे, सुदृढ़ तथा आर्थिक सम्पन्न लोग होंगे, परिवार में परस्पर प्रेम और सहयोग की भावना वाला समाज होगा, जो देश की प्रत्येक समस्याओं को सुलझाने में सक्षम होगा।

छत्तीसगढ़ में रामकृष्ण मिशन के दो केन्द्र हैं – १. रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर और २. रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर। इनके अतिरिक्त भावधारा के १९ केन्द्र हैं, जो स्कूल, कॉलेज, चिकित्सा केन्द्र, युवा शिविर, भक्त शिविर, पाठ-चक्र, सौजन्य मिलन, सारस्वत व्याख्यान, राष्ट्रीय संगोष्ठी आदि गतिविधियों का संचालन कर रहे हैं और रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के आदर्शों के अनुसार युवक-युवतियों के चरित्र का निर्माण कर, उन्हें एक आदर्श नागरिक बनाने में सहायता कर रहे हैं। यहाँ के छात्रावासों और आश्रम के संन्यासियों से जुड़े बहुत से लोग शिक्षक, चिकित्सक, अधिवक्ता, अभियन्ता, राजनीति प्रशासनिक सेवाओं और भारत सरकार के अन्य उच्च पदों पर सच्चाई से सेवायें देकर अपने आदर्शमय जीवन द्वारा समाज को प्रेरणा दे रहे हैं। वयस्क लोग रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से जुड़कर एक प्रबुद्ध नागरिक बनकर समाज की सेवा में संलग्न हैं।

छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा में पले-बढ़े अनेकों लोगों ने स्वामी विवेकानन्द जी के 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' के आदर्श के पालन एवं समाज के युवक-युवतियों के सर्वांगीण विकास में अपने जीवन को समर्पित करने वाले ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द, स्वामी श्रीकरानन्द, स्वामी त्यागात्मानन्द, स्वामी सर्वहितानन्द हैं। स्वामी विवेकानन्द के उस आदर्श के अनुपालन अभी भी कृत संकल्प हैं – स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी निखिलात्मानन्द, स्वामी ब्रह्मेशानन्द, स्वामी निखिलेश्वरानन्द, स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी सुहृदानन्द, स्वामी चिरन्तनानन्द, स्वामी जयदानन्द, स्वामी रामतत्त्वानन्द, स्वामी करुणानन्द, स्वामी दिवाकरानन्द, स्वामी इष्टदेवानन्द, स्वामी सिद्धिप्रदानन्द तथा स्वामी ब्रह्मयोगानन्द। रामकृष्ण मिशन से इतर और भी बहुत से संन्यासी-ब्रह्माचारी जैसे स्वामी विश्वात्मानन्द, स्वामी एकात्मानन्द, आदि संन्यासियों ने विवेकानन्द के आह्वान पर अपना सब कुछ त्यागकर पूरा जीवन समर्पित कर दिया है। सन्त सदृश डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी अपने बड़े भाइयों की तरह अपना सम्पूर्ण जीवन विवेकानन्द को समर्पित 'विवेकानन्द विद्यापीठ' की स्थापना कर युवाओं के चरित्र-निर्माण में सहयोग कर रहे हैं। दूसरी ओर गृहस्थ भक्तों में स्वर्गीय दाऊ तुंगनराम चंद्राकर, स्वर्गीय दाऊ रामलाल चंद्राकर, स्वर्गीय दाऊ दादूराम चंद्राकर ने भावधारा की सेवा में अपना जीवन दे दिया। दाऊ श्री केशव चंद्राकर तथा इन सबका परिवार, कर्मठ इंजीनियर श्री वीरेन्द्र कुमार वर्मा तथा ऐसे ही और भी बहुत से गृहस्थ भक्त जिन सबका नाम देना यहाँ सम्भव नहीं है, वे सभी छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विववेकान्द भावधारा के आदर्श सपूत हैं, जिनके मार्गदर्शन से हजारों-लाखों लोग लाभान्वित हुए हैं और सर्वांगीण विकास की परिभाषा को अपने आप में आत्मसात किये हुए राष्ट्र की सेवा में समर्पित हैं। ○○○

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह मूर्ति छत्तीसगढ़ के राजधानी रायपुर में विवेकानन्द सरोवर (बूढ़ा तालाब) में है। यह विश्व की सबसे ऊँची ध्यानमूर्ति है। यह मूर्ति ३१ फुट ऊँची है। यह ६ फिट ऊँचे चबुतरे पर रखी हुयी है, इस प्रकार इसकी कुल लम्बाई ३७ फिट ऊँची है। यह सीमेन्ट और कंकरीट से बनी है और इसका वजन ६०टन है। इस मूर्ति को भिलाई के प्रसिद्ध मूर्तिकार श्री जे. एम. नेलसन ने बनाया है। इस विख्यात मूर्ति का उद्घाटन १६ अप्रेल, २००५ को तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने किया। इस अवसर पर मुख्यमन्त्री डॉ. रमन सिंह, राज्यपाल के. एम सेठ, स्वामी सत्यरूपानन्द जी और अनेकों मन्त्री आदि उपस्थित थे। विदित हो कि स्वामी विवेकानन्द रायपुर में १८७७ से १८७९ तक दो वर्षों तक रहे थे।

युवा-शक्ति का सदुपयोग करें

डॉ. एस.एन. सुब्बाराव, निदेशक, राष्ट्रीय युवा योजना, दिल्ली

(डॉ. एस. एन. सुब्बा राव 'भाईजी' विख्यात महान समाज-सुधारक और युवाओं के सत्प्रेरक हैं। अशान्त चम्बल के ६५४ क्रूर, खूँखार डकैतों ने इनकी प्रेरणा से समर्पित कर शान्तमय जीवन जीने का संकल्प लिया। देश-विदेश के विभिन्न भागों में अब तक हजारों युवा-शिविरों के द्वारा युवकों के चरित्र-निर्माण एवं उनमें राष्ट्रीय भावना जागृत करने का कार्य भाईजी करते चले आ रहे हैं। इनके आह्वान पर लाखों युवा अपना सब कुछ छोड़कर देश-सेवा हेतु दौड़े चले आते हैं। गत वर्ष भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंहजी की अध्यक्षता में हुई राष्ट्रीय एकता परिषद में उन्होंने यह व्याख्यान दिया था, जिसे प्रशासनवर्ग एवं लोककल्याण में संलग्न अधिकारियों के प्रेरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। - सं.)

मैं 'राष्ट्रीय एकता परिषद' की तीसरी सभा में भाग ले रहा हूँ। रात भर ट्रेन में था। मेरे मन में एक विचार आ रहा था - २३ सितम्बर को हमारी सभा होगी और क्या २४ सितम्बर को यह भारत बदल जायेगा? सम्पूर्ण भारत से आये हुए महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से दिनभर होने वाली लम्बी चर्चा के बाद, क्या कल एक अच्छा भारत बन जायेगा? माननीय प्रधानमंत्री जी और आप सभी लोग दिन भर यहाँ बैठे हैं। क्या हमलोग भारत के भाग्य को कल बदलने जा रहे हैं? मैं सोचता हूँ कि हमें एक बहुत बड़ी शक्ति का उपयोग करना चाहिये। मैं युवकों के साथ कार्य करता हूँ। जब मैं स्वयं युवक था, तब से १९४३ से ही युवकों के साथ कार्य करना आरम्भ किया। इसलिए ७० वर्षों का यह अनुभव मुझसे कहता है – **यदि युवकों का थोड़ा मार्ग-दर्शन किया जाय, तो वे परिस्थितियों को बदल कर अच्छा बना सकते हैं, यही मैं जीवन भर करता चला आ रहा हूँ।**

क्या इस भावना को लोगों में, विशेषकर सर्वप्रथम युवकों में और उसके बाद सामान्य जनता में उत्पन्न करने के लिये युवाशक्ति का उपयोग कर सकते हैं? क्योंकि उनमें महान शक्ति है। उदाहरण के लिये पांडिचेरी में हमारा शिविर था। अन्तिम दिन मैंने कहा, सभी अपनी-अपनी बात कहें। एक लड़के ने कहा - "मैं इस शिविर में ८ दिन पहले एक मद्रासी ब्राह्मण के रूप में प्रवेश किया था, किन्तु आज एक भारतीय बनकर जा रहा हूँ।" ऐसी भावना हमारे युवकों में अवश्य आनी चाहिये, दूसरी ओर जहाँ तक धार्मिक सम्बन्धों की बात है, हमें सभी लोगों के मन को प्रशिक्षित करना होगा। १८९३ में शिकागों में प्रदत्त अपने व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, हम अन्य धर्मों के प्रति केवल सहिष्णु ही न बनें, अपितु सभी धर्मों को सत्य मानकर स्वीकार करें। सभी धर्मों को सत्य के रूप में स्वीकार करने का दृष्टिकोण धर्म निरपेक्षता है। महात्मा गाँधी जी कहा करते थे – "मैं हिन्दू हूँ, मैं ईसाई हूँ, मैं बौद्ध हूँ, मैं जैन हूँ, मैं सिक्ख हूँ। कैसे? क्योंकि सभी धर्मों का मूल आधार है – सत्य वचन, सच्चाई, ईमानदारी, पड़ोसियों को प्रेम करना, सभी धर्म यही कहते हैं। हम धर्म को अपने वस्त्र, अपने केश या वैसी ही अन्य चीजों से जोड़ लिये हैं, और इससे परेशान हैं। इसलिये धर्म के मूल आधार वास्तविक मूल्यों, आदर्शों की अवश्य ही शिक्षा देने की आवश्यकता है। मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ।

उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर में समस्या है। उत्तर प्रदेश में ही एक बरेली जिला है। बरेली के जिलाधिकारी ने रमजान के एक सप्ताह पहले सभी धर्मों के लोगों की एक सभा बुलायी और इस वर्ष बरेली में शान्तमय वातावरण रहा। जबकि पिछले वर्ष वहाँ कितनी अशान्ति थी। हमारे देश में लगभग ६००-७०० जिलाधिकारी हैं। यदि बरेली के जिलाधिकारी इसे कर सकते हैं, तो सभी जिलाधिकारी ऐसा क्यों नहीं कर सकते?

यदि हम 'राष्ट्रीय एकता परिषद' के सदस्य प्रतिवर्ष मिलना चाहते हैं, तो हमें भारत में उत्सव-त्योहारों के पहले एक सभा करनी चाहिये, क्योंकि अधिक समस्याएं त्योहारों के समय ही आती हैं, इसलिये दीवाली, ईद, क्रिसमस के पहले हमलोगों की एक सभा होनी चाहिए। उसमें सभी धर्मों के अनुयाई आयेंगे। सभी धर्मावलम्बी हर त्योहार में झगड़ने के बदले एक साथ मिलकर उत्सव मनायेंगे। वास्तव में मैं उन जिलाधिकारी का नाम भूल रहा हूँ। मैंने उनकी प्रशंसा की। मैंने उन्हें सुव्यवस्था बनाने के लिये पत्र लिखकर बधाई दी। नहीं तो, हमेशा हिंसा होती है, लोग मारे जाते हैं, उसके बाद हमारी मिलिट्री या पुलिस, रेपिड एक्शन फोर्स पुलिस जाती है, कुछ और लोगों को मारकर तब परिवेश को शान्त करती है। इससे अच्छा होगा कि हम हिंसा होने के पहले ही उसे कैसे रोक सकते हैं, इस पर विचार करें। नहीं तो, हम होने की प्रतीक्षा करते हैं और हिंसा होने के बाद कार्यवाही करते हैं।

इस सन्दर्भ में मैं एक बात कहना चाहता हूँ। हम लोगों के पास सरकार से सहयोग प्राप्त बहुत-सी संस्थायें हैं। जैसे राष्ट्रीय स्तर पर 'नेहरू युवा केन्द्र संगठन' है, 'राष्ट्रीय सेवा योजना (एन.एस.एस)' है, एन.सी.सी. है। मैं अपना व्याख्यान समाप्त करने के पहले यह परामर्श देना चाहूँगा कि आप सभी प्रस्तावों का अनुमोदन करें, जो आप कर सकते हैं, किन्तु उसके बाद हम उसे कुछ कार्य रूप में परिणत करें।

'राष्ट्रीय एकता परिषद' केवल वाद-विवाद की सभा बनकर न रह जाय, यह कार्योन्मुखी हो, कार्यरूप में परिणत हो। वस्तुत: दो बातें आवश्यक हैं। पहली बात है कि क्या परिषद की दूसरी सभा तक आप - **core group** (केन्द्रीय कार्यकारिणी दल) बनाने की बात सोच सकते हैं? जो लोग इसमें ठीक-ठीक रुचि रखते हैं, ऐसे ५ या १० लोगों का एक दल बनावें, जो लोग महीने में एक बार या दो बार, एक वर्ष में या जब भी मिल सकें और कार्यक्रमों की एक रूप-रेखा बना लें। 'राष्ट्रीय एकता परिषद' की ओर से वे लोग कुछ कार्य करें। एक कार्य का मैं आपको सीधा परामर्श दे सकता हूँ। मुजफ्फरनगर समस्या के बाद मैं वहाँ गया था। मैं एक विश्वविद्यालय के कुलपति जी से मिला। उन्होंने कहा – मैं यहाँ युवकों का शिविर लगाने के लिये तैयार हूँ। क्योंकि यहाँ कुछ गाँव के भी इस विश्वविद्यालय में आते हैं और अन्य स्थानों से भी लोगों को बुलाऊँगा। मैंन कहा कि मैं भारत के सभी भागों से युवकों को बुलाऊँगा। इसलिये हम मुजफ्फरनगर जैसे शिविर की बात सोच सकते हैं, क्योंकि दुर्भाग्य से वहाँ हिंसा गाँवों में भी फैल चुकी है। किन्तु सारी समस्या है रुपया, रुपया, रुपया ! मैं कहता हूँ कि हम हिंसा को रोकने के लिए कितने खर्च करते हैं ! किन्तु समस्या आने के पहले क्या हम शान्ति बनाये रखने के लिये कुछ रुपये खर्च नहीं कर सकते हैं, फिर वही समस्या कि रुपये नहीं हैं !

वास्तव में जब मैं चम्बल घाटी में काम कर रह था, तब मुझे वहाँ एक बहुत बड़ी सफलता मिली थी। वहाँ ६५४ क्रूर डकैत, जिनसे चम्बल की घाटी अशान्त थी, आज वे सभी शान्तमय जीवन जीने लगे हैं। उन लोगों ने अपने हथियार समर्पित कर दिये, यह एक बहुत बड़ी परीक्षा थी, उपलिब्ध थी। तब मैंने सरकार से शान्ति का वातारवरण बनाये रखने के लिए कुछ करने के लिए कहा, तो सरकार ने कहा कि इसके लिये हमारे पास पैसे नहीं हैं। एक डकैत को मारने के लिए सरकार लाखों-लाखों रुपये खर्च करती है, लेकिन जब मैं कहता हूँ, अब हम युवकों को डकैत बनने से रोकें। तो वे कहते हैं कि हमारे पास रुपये नहीं हैं। वास्तव में उनका जो शब्द है कि Unproductive व्यर्थ लाभरहित कार्यों के लिये हमारे पास धन नहीं है। यदि एक आदमी डकैत बन जाता है, तो उसे मारने के लिए वह Productive सार्थक लाभकर हो जाता है ! अत: हमें थोड़ा व्याहारिक होना चाहिये। दूसरी बात है कि क्या हम अपने युवा-वर्ग को यह संवेदना दे सकते हैं – 'मैं भारत का निर्माण कर रहा हूँ।' यह संवेदना कहाँ है? और युवकों को अनुभव करने के लिये वह सुअवसर कहाँ है? जब मैं १३ वर्ष का था, तब अंग्रेज-पुलिस द्वारा जेल में ले जाया गया था । मैंने कहा कि मैं इस देश में स्वाधीनता लाने जा रहा हूँ। कहाँ है वह संवेदना, कहाँ है वह भावना? इसलिये मैं कहता हूँ, उत्तराखण्ड में जहाँ इतना बड़ा विध्वंस हुआ है। हमलोग करोड़ों-करोड़ों रूपये पुनर्निर्माण में लगाते हैं। मैं कहता हूँ , अपने सभी रूपयों का १%, १रुपये में १ पैसा, युवकों की सहभागिता में खर्च करें। तमिलनाडु, नागालैंड, कश्मीर से युवकों को बुलाकर उन्हें एक साथ उत्तराखण्ड का पुनर्निर्माण करने दें। वे सभी युवक यह कहें कि मैं उत्तराखंड का पुनर्निमाण कर रहा हूँ, मैं अपने को सम्पूर्ण भारत से जोड़ रहा हूँ। अत: हम इस प्रकार, इस दृष्टि से चिन्तन करें। वाद-विवाद की अपेक्षा राष्ट्रीय एकता परिषद को कुछ करने के लिये बहुत ही अच्छी सम्भावना है। ○○○

मातृभूमि के प्रति प्रेम

विदेश से लौटते समय एक अंग्रेज मित्र ने स्वामी विवेकानन्द से प्रश्न किया था कि पाश्चात्य के विलास-वैभव के बीच चार वर्ष बिताने के पश्चात् उनकी मातृभूमि उन्हें कैसी लगेगी? स्वामीजी ने उत्तर में कहा था, ''विदेश में आने के पहले भी मैं मातृभूमि से प्रेम करता था। परन्तु अब तो मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे भारत का एक-एक धूलिकण मेरे लिए पवित्र है। भारत की वायु मेरे लिए पवित्र है। भारत मेरी पुण्यभूमि है, मेरा तीर्थस्थान है।''

स्वामीजी को एक बार किसी ने कहा, ''संन्यासी को अपने देश की माया त्यागकर सब देशों के प्रति समदृष्टि अपनानी चाहिए।'' स्वामीजी ने उत्तर दिया, ''जो अपनी माता को प्रेम नहीं करता, वह दूसरों को भोजन, दूसरों की माँ का पालन कैसे करेगा?'' अर्थात् संन्यासी के लिए भी यही उचित है कि वे अपनी मातृभूमि से अटूट प्रेम करें। जो अपने देश से प्रेम नहीं करता, वह पूर्ण वसुधा को कैसे अपनाएगा? पहले स्वदेश प्रेम, फिर उस स्वदेश प्रेम का आधार लेकर ही विश्व-प्रेम करना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में धर्म

डॉ. सन्ध्या त्रिपाठी
प्रवक्ता, महारानी बनारस महिला महाविद्यालय, रामनगर, वाराणसी

धर्म एक जीवन्त एवं चेतन तत्त्व है, जो जन-जन के हृदय में वास करता है। धर्म को हम धारण करते हैं, बाहर से नहीं अन्दर से। धर्म की आन्तरिक शक्ति सत्य है और सर्वोत्तम धर्म वही है, जिसके मूल में सत्य विद्यमान हो। धर्म शब्द का प्रयोग कर्त्तव्य, गुण, नियम, न्याय, शील, कर्म इत्यादि कई अर्थों में प्रयोग होता आया है। वैदिक साहित्य में धर्म का अर्थ धारण करना, सहायता करना अथवा पोषण करना होता है। इसी प्रकार बृहदारण्यक में कहा गया कि "**अयं धर्मः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य धर्मस्य सर्वाणि मधु**"[१] धर्म मनुष्य को और मनुष्य धर्म को बनाता है, दोनों एक-दूसरे के निर्मित मधु हैं। भारतवर्ष में धर्म के स्वरूप की व्याख्या करने वाले महापुरुषों में स्वामी विवेकानन्द का नाम अद्वितीय है। उन्होंने धर्म की अपरिहार्यता एवं उपादेयता स्थापित करने, धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या करने, सार्वभौम धर्म का प्रतिपादन एवं विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने का महान कार्य किया। स्वामी विवेकानन्द के अलावा किसी दूसरे व्यक्ति ने धर्म से जुड़े उच्च मूल्यों की भावना के प्रति इतनी निष्ठा नहीं दिखाई जितनी उन्होंने दिखाई है। उनका धर्म था, "मानव की सेवा में ईश्वर का साक्षात्कार"।

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म की सुन्दर व्याख्या करते हुए कहा – "धर्म का अर्थ है, उस ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति जो सभी मनुष्यों में पहले से विद्यमान है।[२] 'धृ' धातु से उत्पन्न यह धर्म अंग्रेजी के Religion शब्द का पयार्यवाची नहीं है। अंग्रेजी में यदि कोई शब्द इस धर्म शब्द के अर्थ के निकट पहुँचता है, तो वह है - Integration। अत: धर्म वह है, जो पूर्ण बनाए, अलगाव की प्रवृत्ति को दूर करे और मानव समाज को अखण्डता में गूँथ दे। धर्म के इस उदार व्यापक अर्थ का अनुशीलन करने पर धर्मों की आपसी लड़ाई अपने आप दूर हो जायेगी।"[३] उन्होंने धर्म की अनुभूति पर विशेष जोर दिया।

धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति : ईश्वर के स्वरूप की अनुभूति

उनका मत था भारत में धर्म का तात्पर्य प्रत्यक्ष अनुभूति है। इससे थोड़ा सा भी कम नहीं। कोई भी धर्म हमें नहीं सिखा सकता कि यदि तुम इस मत को मान लो, तो तुम्हारा उद्धार हो जायेगा, क्योंकि ऐसी बात पर वे विश्वास करते ही नहीं। तुम अपने को जैसा बनाओगे, अपने को जैसे साँचे में ढालोगे, वैसे ही बनोगे। तुम जो भी हो, जैसे हो, वह ईश्वर की कृपा और अपनी चेष्टा से बने हो। किसी मत में विश्वास मात्र से तुम्हारा कोई विशेष उपकार नहीं होगा। अनुभूति की यह शक्तिमयी वाणी भारत के आध्यात्मिक गगन-मण्डल से आविर्भूत हुई है और केवल हमारे ही शास्त्रों ने बार-बार कहा है कि ईश्वर के दर्शन करने होगें, धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति करनी होगी, केवल सुनने से कार्य नहीं होगा। तोते की तरह कुछ शब्द और धर्म विषयक बातें रट लेने से काम नहीं चलेगा, केवल बुद्धि द्वारा स्वीकार कर लेने से कार्य नहीं चलेगा, आवश्यकता है अपने भीतर धर्म को प्रवेश कराने की।[४]

उनका मत था कि अनुभूति ही धर्म का सार है, और मैं तुम्हें ईश्वर का उपासक तभी कहूँगा, जब तुम उसके स्वरूप का अनुभव कर सको। जब तक तुम्हें यह अनुभूति नहीं होती, तब तक तुम्हारे लिये ईश्वर कुछ अक्षरों से बना एक शब्द मात्र है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।[५]

ईश्वर प्राप्ति के साधन

स्वामीजी मानते थे कि मानव-जाति का परम ध्येय, सभी धर्मों का लक्ष्य या साध्य ईश्वर के साथ पूर्ण संयोग है, पूर्ण तादात्म्य है, जो प्रत्येक व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप है। यह संयोग, यह तादात्म्यता कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग की साधना से सम्भव है। इनका परिचय इस प्रकार है –

१ कर्मयोग – इसके अनुसार मनुष्य कर्म एवं कर्त्तव्य के द्वारा अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति करता है।

२. भक्तियोग – इसके अनुसार अपने ईश्वर-स्वरूप की अनुभूति ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम द्वारा होती है।

३. राजयोग – इसके अनुसार मनुष्य अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति मन:संयम के द्वारा करता है।

४. ज्ञानयोग – इसके अनुसार मानव अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति ज्ञान के द्वारा करता है। ये सब केन्द्र - भगवान की ओर ले जाने वाले विभिन्न मार्ग हैं।[६]

मानवता की सेवा या शिव ज्ञान से जीव सेवा – स्वामी विवेकानन्द ने हमें शिक्षा दी है कि मानव की सेवा

ही भगवान की सेवा है, यही धर्म का सार है। उन्होंने कहा – मैंने इतनी तपस्या करके यही सार समझा है कि हर जीव में वे विराजित हैं, इसके सिवा ईश्वर कुछ भी नहीं है। जीवों पर दया करनेवाला ही ईश्वर की सेवा कर रहा है।[७]

बहुरूपों में खड़े तुम्हारे आगे, और कहाँ है ईश?
व्यर्थ खोज यह, जीव-प्रेम की ही सेवा पाते जगदीश।[८]

स्वामी विवेकानन्द ने सबके समक्ष सर्वजन-हिताय सर्वजन-सुखाय का यह मन्त्र रखा और कहा – If you want to serve God, serve man – यदि तुम भगवान की सेवा करना चाहते हो, मनुष्य की सेवा करो। भगवान ही रोगी, दरिद्र और सब प्रकार के मनुष्यों के रूप में हमारे सामने खड़े हैं।[९] आगे वे कहते हैं, तुमनें पढ़ा है - 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', अर्थात् अपनी माता को ईश्वर समझो, अपने पिता को ईश्वर समझो, परन्तु मैं कहता हूँ - 'दरिद्रदेवो भव', 'मूर्खदेवो भव', गरीब, निरक्षर, मूर्ख इन्हें ही अपना ईश्वर मानो। इनकी सेवा करना ही अपना परम धर्म समझो।[१०] समस्त उपासनाओं का यही सार है कि व्यक्ति पवित्र रहे और सदैव दूसरों का भला करे। वह व्यक्ति जो शिव को निर्धन, दुर्बल तथा रुग्ण व्यक्ति में देखता है, वही सचमुच शिव की उपासना करता है, यदि वह केवल उन्हें मूर्ति में देखता है, तो उसकी उपासना अभी नितान्त प्रारम्भिक है। उन्होंने कहा कि सबसे पहले उस विराट की पूजा करो, जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो। ये मनुष्य और पशु जिन्हें हम अपने आस-पास और आगे-पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे देशवासी। परस्पर ईर्ष्या-द्वेष करने और झगड़ने की जगह हमें इनकी पूजा करनी होगी। धर्म में विद्वेष, लड़ाइ-झगड़े को समाप्त करने के लिये उन्होंने सर्वधर्म-समन्वय पर बल दिया।

सर्वधर्म-समन्वय की धारणा

स्वामी विवेकानन्द ने सर्वधर्म-सद्भाव पर बल दिया। उनका कहना था कि हम लोग सब धर्मों के प्रति न केवल सहिष्णुता में विश्वास करते हैं, अपितु सब धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने पर अभिमान है, जिसने पृथ्वी के सभी धर्मों, उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है।[११] उनकी शिक्षा यही थी कि एक दूसरे को समझो, और स्वीकार करो। उन्होंने पवित्र ग्रन्थ 'शिवमहिम्न-स्तोत्रम्' से उद्धरण दिया –

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

अर्थात् जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न रूचि वाले विभिन्न टेढ़े-मेंढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग भी तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

उन्होंने दूसरा उद्धरण श्रीमद्भगवद्गीता से दिया –

ये यथा मां प्रपद्यन्तें तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।[१२]

अर्थात् जो कोई मेरी ओर आता है, चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा मेरे पास ही आते हैं।

वस्तुतः धर्ममतों की अनेकता लाभदायक है, क्योंकि वे सभी मनुष्यों को धार्मिक जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। और इस कारण सभी अच्छे हैं। उनका मत था धर्म का कोई एक स्वरूप सभी के लिये उपयुक्त नहीं होगा। सभी धर्म एक सूत्र में पिरोये मोतियों के समान हैं। हम लोगों को अन्य सब बातों को अलग रखते हुए सभी में व्यक्तित्व को खोजने की चेष्टा करने चाहिए। उनका विचार था कि ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ, प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों के सार भाग को आत्मसात् करके पुष्टि-लाभ करें और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अनुसार विकसित हो। साधुता, पवित्रता और सेवा किसी सम्प्रदाय-विशेष की सम्पत्ति नहीं है और प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ तथा अतिशय उन्नत चरित्र के नर-नारियों को जन्म दिया है। इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसी का धर्म जीवित रहेगा, तो मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से उस पर दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि सारे प्रतिरोधों के बावजूद शीघ्र ही प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा होगा - 'संघर्ष नहीं सहयोग', 'पर-भाव विनाश नहीं, परभाव ग्रहण', 'मतभेद और कलह नहीं, समन्वय और शान्ति'।[१३]

विवेकानन्दजी का मत था कि हमें धर्म से साम्प्रदायिकता और संकीर्णता को दूर करने के लिये देशवासियों को ऋग्वेद में उल्लिखित '**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**' के सत्य को सीखना होगा। धर्म की इस प्रत्यक्ष

उपलब्धि से जगत का महान हित होगा और अविराम विवाद एवं द्वन्द्व सब दूर हो जायेंगे और जगत में शान्ति का राज्य स्थापित हो जायेगा। स्वामीजी ने जगत में धर्मों में समन्वय लाने के लिए वेदान्त पर बल दिया।

वेदान्त समस्त धर्मों का सार – स्वामी विवेकानन्द वेदान्त को विभिन्न धर्मों द्वारा उपदेशित निर्दिष्ट सदगुणों के संश्लेषण से एक सार्वभौम धर्म की स्थापना के अपने आदर्श में सर्वाधिक सहायक मानते थे, जिसके अनुसार हमें प्रत्येक व्यक्ति से बन्धु की तरह नहीं बल्कि स्वयं की तरह प्रेम करना चाहिए। अत: उनका आदर्श सार्वभौम बन्धुत्व नहीं, सार्वभौम आत्मतत्त्व था। उन्होंने वेदान्त में उल्लिखित "**अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहम्**" इस आध्यात्मिक तत्त्व को प्रत्येक व्यक्ति को आत्मसात करने के लिये बल दिया। यह व्यक्ति को न केवल अपने जीवन के बारे में सच्ची धारणा कराता है, अपितु मानव जाति की अखण्डता को अटल आधार प्रदान करता है। जिसे सभी तरह के सामाजिक राष्ट्रीय जीवन तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्‌भाव का मूलाधार बनाया जाना चाहिए।[१४]

स्वामी विवेकानन्द ने जिस व्यावहारिक वेदान्त का उपदेश दिया, उसी को धर्म कहा और हिन्दू धर्म में निहित अनासक्ति एवं वैराग्य की संकल्पना के साथ-साथ इस्लाम में निहित समता, ईसाईयत में निहित सेवा और बौद्ध धर्म में निहित दया की संकल्पना पर जोर दिया। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के ऐसे स्वरूप की परिकल्पना की जिसकी नीति में उत्पीड़न या असहिष्णुता के लिए कोई स्थान नहीं होगा, जो हर स्त्री-पुरुष की दिव्यता को स्वीकार करेगा और जिसकी सारी शक्ति मानवता को उसकी सच्ची दिव्य प्रकृति का साक्षात्कार करने में सहायता देने में ही केन्द्रित होगी। ऐसा ही धर्म सामने रखिये और सारे राष्ट्र आपके अनुयायी बन जायेंगे।[१५] ○○○

सन्दर्भ

१. बृहदारण्यक, ४.११; **२.** विवेकानन्द साहित्य, भाग-२, पृ.३२८; **३.** स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृ. ११९; **४.** "वि. सा. भाग-५, २६८-२६९; **५.** वि.सा. भाग-३, पृ-२५८; **६.** वही, पृ. १६९-१७०; **७.** वही, भाग-६ पृ.६; **८.** वही, खण्ड -९, ३२५; **९.** स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृ. १३८; **१०.** वि.सा. भाग-३, पृ.३५; **११.** वही. भाग-१,पृ.३; **१२.** वही, भाग-१, पृ.३–४; **१३.** वही, भाग-१, पृ.२७; **१४.** स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृ. १७४; **१५.** वि.सा.,भाग-१, पृ.२०-२१।

विश्व में शान्ति-एकता की स्थापना एवं युवकों को रचनात्मक कैसे करें?

शरद कुमार साधक, वाराणसी

मैं शान्ति चाहता हूँ, आप शान्ति चाहते हैं, हमारे आसपास रहने वाले लोग शान्ति चाहते हैं। मगर शान्ति है कहाँ? हमारे आसपास में अशान्ति है, समाज में अशान्ति है, देश और दुनिया में अशान्ति है। अशान्ति का शमन करने के लिये बनाए गए राष्ट्रीय संगठन, समाजिक संस्थाएं और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सरकारें निरूपाय हैं। क्योंकि ये सब संस्थाएं अशान्ति शमन का तात्कालिक उपाय ही कर सकती हैं। स्थायी शान्ति के लिये तो हमें उत्पादन में हाथ बँटाना होगा, उत्पादन में अधिक उपभोग करने की आदत बदलनी होगी, आत्मानुशासन का तौर-तरीका सीखना होगा। दूसरों को सहने की शक्ति पैदा करनी होगी। विरोधी विचार एवं आस्था रखने वालों के प्रति भी उदारता बरतनी होगी। क्या उसके लिये हमारी मनोभूमि तैयार है?

इतिहास में पहली बार ऐसे प्रश्नों पर विचार हुआ, तो भारतीय चिन्तकों ने उत्पादक बनने का संकल्प लिया **'अन्नंबहुकुर्वीत तद् व्रतम्।**" वे प्रकृति की भाँति पेड़-पौधों व पशु-पक्षियों के प्रति इतने सदय रहे कि हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक फैले हमारे विस्तृत भारतीय भू-भाग में पाँच सौ जातियों के जीव, पच्चीस सौ प्रकार के पक्षी और तीस हजार जाति के जन्तु उनके सहजीवी बन गए। सबके सहजीवन की जो कला विकसित हुई, वही धर्म कहलाती है। धर्म से समाज में सदाचार, आचार में सद्व्यवहार, संस्कृति में आदर्श, सेवा में सर्वोदय और विश्व में वसुधैवकुटुम्बकम् का विचार विकसित हुआ है। इस विचार के मूल में संयम है। अत: संयमित जीवन को जीवन कहा जाता है – **संयमः खलु जीवनम्।**

संयमी दूसरों के जीवन को सम्पन्न बनाता है। वह तुलसी के पौधों को पानी दिए बिना भोजन नहीं करता। गंगा में नहाने को पुण्य मानता है। जीवमात्र के प्रति दया रखता है। गाय को माता की तरह पूजता है। कबूतर की प्राण-रक्षा के लिये समय आने पर अपने जीवन को अर्पित कर देता है। सृष्टि का सन्तुलन बनाए रखनेवाली इस आचार संहिता के प्रति जन-

गण में अनुराग पैदा करने के लिये ही कहा जाता है –

परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई ।।

भारत बहुत बड़ा देश है। इसमें अभी २९ राज्य और कई केन्द्रशासित क्षेत्र हैं। जलवायु, रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, भाषा, वेश-भूषा की विविधता है। इसी तरह एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया जैसे महाद्वीपों के डेढ़ सौ से अधिक देशों के निवासियों में भी एकरूपता नहीं है। फिर भी वे सभी शान्ति से जीना चाहते हैं। इसलिये भौगोलिक सुविधाओं, उपलब्ध साधनों, सामाजिक आवश्यकताओं और जन-मन को ध्यान में रखकर मनीषियों ने जैसे विधि-निषेध बनाए, उन्हीं के आधार पर संसार में लगभग दो हजार से अधिक धर्म संहिताएं बन गईं, जिनका प्रचार सम्प्रदाय करते हैं। भारत में सम्प्रदायों की बहुलता होते हुए भी चर्चित नाम अंगुलियों पर गिनने लायक ही हैं। जैसे वैदिक, जैन, बौद्ध, इस्लाम, पारसी, सिक्ख आदि।

हर धर्म चाहता है कि विश्व में सत्य, प्रेम, करुणा, सहिष्णुता और सहयोग बढ़े। लेकिन जब उसका कर्मकाण्ड रूढ़ हो जाता है, तो वह अपने उद्देश्यों से भिन्न कार्य करने लगता है और उसी से साम्प्रदायिकता फैलती है। आचार्य विनोबा ने इसी ओर इंगित करते हुए कहा था कि हमारे साधु पुरुषों ने समाज का खाकर भी समाज की सेवा नहीं की। यदि वे लोगों को सिखाते कि रोज सुबह उठना है, प्रात:काल का समय अध्ययन में लगाना है, बिना मेहनत किए रोटी नहीं खानी है, अपना काम ठीक समय पर पूरा करना है, रात को सिनेमा नहीं देखना है, ऐसी प्रगाढ़ निद्रा लेनी है कि स्वप्न न आए, तो समाज का स्तर ऊपर उठता और सामाजिक विसंगतियाँ मिट जातीं। भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, हिंसा, मिलावट अशान्ति आदि होती ही नहीं। धर्म-सम्प्रदाय के नायक जिस दिन ये बात समझ लेंगे, उसी दिन कर्मकाण्डों की जगह धर्म का वर्चस्व कायम हो जाएगा।

भारत में धर्म की प्रतिष्ठा करनी है, तो हिन्दुओं की उदारता, जैनों की अहिंसा, बौद्धों की करुणा, इस्लाम का भ्रातृत्व, ईसाइयों की सेवा, पारसियों की सज्जनता, सिक्खों का शौर्य जैसे सद्‌गुण अपनाने होंगे। महात्मा गाँधी ने इसी बात पर बल देते हुये सर्वधर्म प्रार्थना सभाएं की थीं और कहा था कि हिन्दुस्तान कई मिली-जुली सभ्यताओं का घर है, जहाँ वे सब साथ-साथ पनपी, बढ़ी हैं। हम सभी ऐसा काम करेंगे कि हिन्दुस्तान एशिया के या दुनिया के किसी भी हिस्से की कुचली हुई या चूसी हुई जातियों की आशा बनी रहे। सबके जीवन में सहायक बना रहे।

३० जनवरी, १९४८ को हुई गाँधीजी की शहादत ने विश्व के धर्मप्रिय जनता के सामने कुछ बुनियादी प्रश्न खड़े कर दिए हैं, जैसे - १. विज्ञान की उपब्धियों ने विश्व को एक परिवार बना दिया है, ऐसी हालत में अब जाति, सम्प्रदाय, भाषा, लिपि, ग्रन्थ आदि की हठधर्मिता रखनेवाले लोगों की प्रासंगिकता क्या है? २. अन्तर्विरोधी समाज-व्यवस्था को परस्पर पूरक, शान्तिप्रिय सहयोगी समाज की रचना में परिवर्तित करने की दृष्टि से धर्म-सम्प्रदायों के कार्यक्रम क्या हैं? ३. फूल-पत्ते, पेड़-पौधे, पर्वत-नदी, पशु-पक्षी के साथ प्रकृति व पर्यावरण की रक्षा के लिये क्या धर्मप्रिय लोगों को अपने आहार-विहार में परिवर्तन करने की जरूरत महसूस नहीं होती?

इस तरह के जीवन व्यवहार से सम्बद्ध प्रश्नों पर सह-चिन्तन करने के लिये महात्मा गाँधी, अल्बर्ट आइंस्टीन, मार्टिन लूथर किंग आदि महापुरुषों के सहयोगियों ने 'वर्ल्ड कान्फ्रेंस आफ रिलीजन फार पीस' जैसी संस्था की स्थापना की है। इसी तरह की दूसरी संस्थाएं भी देश-विदेश में काम कर रही हैं। भारत में 'राष्ट्रीय युवा योजना' के अन्तर्गत इसी प्रकार का रचनात्मक कार्य हो रहा है। **सबका लक्ष्य है कि विश्व में वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अर्न्तविरोधों को समाप्त करें, जिससे मानव का सर्वांगीण विकास हो और ऐसा सुन्दर व स्वस्थ समुदाय बने, जो विश्वशान्ति ला सके।** व्यवहार विधि है Act locally and think globally – स्थानीय कर्म और वैश्विक चिन्तन।

युवा-शिविरों में सामूहिक श्रमदान से जहाँ उत्पादन की प्रेरणा मिलती है, वहीं सर्वधम-प्रार्थना व सह-चिन्तन से सहमति के सुबिन्दु निश्चित होगें। भारत में इस तरह के दर्जनों शिविर प्रख्यात समाजसेवी श्री एस.एन. सुब्बाराव के निर्देशन में आयोजित हो रहे हैं। पिछले दो दशक में लगभग दो लाख युवक-युवतियों को इन शिविरों से लाभ मिल चुका है। गत वर्ष दक्षिण एशिया मित्रता युवा शिविर हुआ, जिसमें पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, मालदीव, श्रीलंका के अलावा बर्मा, तिब्बत एवं अफगानिस्तान के युवक-युवती भी सहभागी रहे। समय के अनुरूप सांस्कृतिक जीवन को सृजनात्मक उन्मेष देने के लिये ऐसे एकता शिविरों की आवश्यकता है। इन्हीं शिविरों के द्वारा वह मनोभूमि तैयार होगी, जिसमे व्यष्टि एवं समष्टि को शान्ति मिलेगी। युवा शक्ति को रचनात्मक बनाने का यही मार्ग है। ○○○

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द

१२. हम किस प्रकार अपने व्यक्तित्व को निखार सकते हैं? —राहुल गुप्ता, मनीष, चन्द्रकान्त, अम्बिकापुर

सबसे पहले हमें हमारे व्यक्तित्व की निश्चित धारणा तथा समझ होनी चाहिये। तब कहीं अपने व्यक्तित्व को निखारने का प्रश्न उठता है। व्यक्तित्व के कई मूल आधार हैं। यथा – हमारा शरीर, हमारा मन, हमारी बुद्धि और हमारा विवेक। व्यक्तित्व हमारे इन सभी भावों का तथा अन्य भी कई भावों का सम्मिलित एवं संगठित रूप है। व्यक्तित्व प्रत्येक व्यक्ति का स्वसंवेद्य तत्त्व है। उसका कुछ अंश यथा – शरीर, उसका व्यवहार आदि परसंवेद्य भी हो सकते है। किसी व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व केवल स्वसंवेद्य ही होता है। दूसरे लोगों को उस व्यक्ति के व्यक्तित्व की धारणा अनुमानमूलक ही होती है। व्यक्ति के बाह्य आचरण, वार्तालाप, चाल-चलन आदि के द्वारा दूसरा व्यक्ति उसकी अनुमान-आधारित धारणा ही कर सकता है। व्यक्तित्व का अनुभव आधारित स्वरूप तो व्यक्ति स्वयं ही जानता है या जान सकता है।

अपने व्यक्तित्व को निखारने के लिये पहले उससे ठीक-ठीक परिचित होना पड़ता है तथा व्यक्तित्व के द्वारा हम क्या उपलब्ध करना चाहते हैं, इसकी तथा अपने व्यक्तित्व की स्पष्ट धारणा हमारे मन में होनी चाहिये। व्यक्तित्व साधन है, साध्य नहीं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक सुचिन्तित लक्ष्य होना चाहिये, तभी वह व्यक्ति उस लक्ष्य के अनुसार अपने व्यक्तित्व का निखार एवं विकास कर सकता है।

१३. ईश्वर की अनुभूति हम कैसे कर सकते हैं? केवल अनुभव ही नहीं बल्कि स्वामी विवेकानन्द के समान हम भी उन्हें आमने-सामने देखना चाहते हैं। — संतोष कुमार, अम्बिकापुर

ईश्वर की अनुभूति के अनन्त पथ हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वभाव के अनुसार ईश्वर-प्राप्ति की साधना करनी चाहिये। यहाँ यह स्मरण रखें कि ईश्वर साधनलब्ध नहीं है, वे कृपालब्ध हैं। मनुष्य को ईश्वर की प्राप्ति ईश्वर की कृपा से ही होती है। तब यहाँ प्रश्न उठता है कि फिर साधना क्यों? साधना केवल चित्तशुद्धि के लिये ही की जाती है। मनुष्य का चित्त जब पूर्णत: शुद्ध होकर उसका समस्त प्रेम ईश्वर के प्रति हो जाय, तो ईश्वर की प्राप्ति की सम्भावना तुलनात्मक दृष्टि से अधिक होती है। कोई भी व्यक्ति ईश्वर को किसी दूसरे व्यक्ति की तरह नहीं देख पाता। प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर उसके अधिकार के अनुसार ही दर्शन देते हैं। यह सत्य और तथ्य अनिर्वचनीय है। कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के समान अपने जीवन में ईश्वर-दर्शन नहीं कर सकता।

१४. धार्मिक स्थलों में लोगों की अकस्मात मृत्यु कैसे हो जाती है? — संतोष कुमार, अम्बिकापुर

यह सोचना ठीक नहीं है कि धार्मिक स्थानों में लोगों की अकस्मात मृत्यु क्यों हो जाती है। लोगों की आकस्मिक मृत्यु पृथ्वी के किसी भी भाग में, किसी भी जगह हो सकती है और होती है। किन्तु धार्मिक स्थलों के प्रति जन-साधारण की विशेष श्रद्धा होती है तथा लोग उस स्थान को जानते हैं, कुछ लोग गये हुये होते हैं, इसलिये वह स्थान हमारे मन में विशेष रूप धारण करता है। धार्मिक व्यक्ति को उस स्थान के प्रति श्रद्धा हो जाती है, आकर्षण हो जाता है, इसलिये वह सोचता है कि धार्मिक स्थानों में लोगों की आकस्मिक मृत्यु क्यों हो जाती है।

मृत्यु जीवन की एक अनिवार्य घटना है। वह कहीं भी, किसी भी कारण से हो सकती है। अत: यह सोचना ठीक नहीं है कि धार्मिक स्थलों में ही लोगों की अकस्मात् मृत्यु क्यों हो जाती है?

प्यारा हिन्दुस्तान है

तुकड़ोजी महाराज

प्यारा हिन्दुस्तान है, गोपालों की शान है।
वीरों का मैदान इसमें भक्तों के भगवान हैं।।
आओ इसे बनायेंगे, भारत को बदलायेंगे।
शूर-वीर उठो तुम ऋषियों की संतान है।।
कवियों की खदान है, गीत का वरदान है।
तिलक, महात्मा गाँधी सारे दुनिया के अभिमान हैं।।
तुकड़्या की आवाज भारत सदा रहे सरताज है।
फले-फूलेगा देश चाहे हो जाये बलिदान है।।

(प्रिय बच्चों ! इस अंक में हम एक गरीब की मानवता और एक साहसी परोपकारी बालक से तुम्हारा परिचय करवा रहे हैं, जिससे तुममें भी इन गुणों का विकास हो । सं.)

कौन छोटा और कौन बड़ा?

स्वामी विवेकानन्द एकबार राजस्थान के किसी स्टेशन पर ट्रेन के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे । किसी कारण ट्रेन न आने से उन्हें तीन दिन तक वहीं स्टेशन पर रुकना पड़ा । उस समय अनेक लोग उनसे धर्मचर्चा करने आते । लोग आते और उनसे बातें करके चले जाते । स्वामीजी ने कुछ खाया है या नही, यह कोई भी नहीं पूछता । स्वामीजी स्वयं भी इस बारे में कुछ न कहते । तीसरी रात सबके चले जाने पर एक गरीब व्यक्ति ने आकर पूछा, 'महाराज, आप तीन दिनों से लगातार लोगों से धर्मचर्चा कर रहे हैं, कुछ खाया तक नहीं, इससे मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है ।' स्वामीजी को लगा कि साक्षात् भगवान एक गरीब के वेश में उनके सामने आये हैं। स्वामीजी ने पूछा, 'क्या तुम मुझे कुछ खाने को दोगे?' वह गरीब निम्न जाति का था। उसने अत्यन्त सरल भाव से कहा, 'मेरी तो बहुत इच्छा होती है कि मैं आपको रोटी बना कर खिलाऊँ। किन्तु यह मैं कैसे कर सकता हूँ? मैं आपको आटा-दाल दे देता हूँ, आप स्वयं दाल-रोटी बना लें ।' स्वामीजी ने उससे कहा, 'तुम अपनी बनाई हुई रोटी मुझे दो, मैं वही खाऊँगा ।' इस पर वह गरीब व्यक्ति डर गया । यदि यहाँ के राजा को पता लग गया कि निम्न जाति का होते हुए भी उसने एक संन्यासी को रोटी बनाकर दी है, तो उसे भारी दण्ड मिलेगा । स्वामीजी ने उसे आश्वासन देकर कहा, 'डरो मत, राजा तुम्हे दण्ड नहीं देंगे ।' वह डरा हुआ तो था, पर साधु-सेवा की इच्छा से उसने स्वामीजी को अपनी बनाई हुई रोटियाँ खिलाई । स्वामीजी कहते थे उस समय उसका लाया भोजन बहुत स्वादिष्ट था । यहाँ तक कि देवराज इन्द्र यदि स्वर्ण के पात्र में अमृत लेकर आते, तो वह इतना तृप्तिदायक होता कि नहीं, इसमें सन्देह है । यह देखकर वहाँ के लोगों ने स्वामीजी से कहा, 'स्वामीजी आपने इस व्यक्ति के हाथ का बना भोजन कैसे ग्रहण किया?' स्वामीजी ने कहा, 'तीन दिनों से आप लोग मुझसे केवल बातें ही करते रहे । किन्तु मैंने कुछ खाया है या नहीं, इसकी आप लोगों ने जरा भी परवाह नहीं की ! आप स्वयं को बड़ा समझते हैं और इस व्यक्ति को छोटा । उसने जो मानवता दिखाई है, उससे वह छोटा कैसा हुआ?'

बाद में वहाँ के राजा से परिचय होने के बाद स्वामीजी ने यह घटना उनको सुनाई । राजा ने उस व्यक्ति को बुलाकर उसकी खूब प्रशंसा की और उसे पुरस्कार दिया ।

साहसी बालक

गुजरात राज्य के आनन्द जिले में एक करमसद नाम का गाँव है । वहाँ अंग्रेजी विद्यालय न होने से वहाँ के कुछ विद्यार्थी पाँच-छह मील दूर पेटलाद गाँव में पढ़ने जाते थे । इतना रास्ता पैदल ही जाना पड़ता था । इसलिए बच्चे भोर में ही विद्यालय के लिए निकल पड़ते थे । खेतों के बीच पगडंडी से होकर गुजरना होता था । रास्ते भर हँसते-खेलते, गप्प लड़ाते वे सब विद्यालय जाया करते थे । भोर का शान्त वातावरण, गाँव की शुद्ध प्राकृतिक हवा, पक्षियों का मधुर कलरव, इनसे बच्चों का मन आनन्द से भरा रहता था ।

एक दिन हमेशा की तरह पाँच-छह विद्यार्थी भोर में विद्यालय की ओर निकले । पगडंडी से जाते समय एक विद्यार्थी का ध्यान गया कि उनमें से एक कम है । आसपास देखकर वह बोला, 'अरे वल्लभ कहाँ गया?'

दूसरे ने जवाब दिया, 'वह देखो, वह वहाँ कुछ कर रहा है ।' उसने चिल्लाकर पूछा, 'अरे वल्लभ, तू क्या कर रहा है वहाँ !'

वल्लभ ने जवाब दिया, 'थोड़ा रुको, बस, अभी मैं आ ही रहा हूँ ।' इतना कहकर उसने खेत की पगडंडी के बीच एक पत्थर के खूँटे को खींच निकाला और एक तरफ फेंक दिया । दौड़ते हुए वह फिर से अपने साथियों से जा मिला । एक साथी ने पूछा, 'अरे वल्लभ, तू पीछे क्यों रह गया ।' वल्लभ ने सरल भाव से कहा, 'रास्ते के बीच एक पत्थर गड़ा हुआ था । हमारी तरह अनेक लोगों को उससे तकलीफ हुई होगी । अँधेरे में कुछ लोगों के पैर में चोट भी लगी होगी । कल मैंने निश्चय किया था कि आज उसे उखाड़ कर ही दम लूँगा । इसलिये उसे निकाल कर फेंक दिया ।'

यह बालक आगे चलकर देश के महान नेता सरदार वल्लभभाई पटेल हुए । इनकी कार्य-कुशलता और दूसरों के प्रति सेवा की भावना को देखकर महात्मा गाँधी जी ने 'सरदार' कहकर उनकी प्रशंसा की थी । ○○○

स्वामी मेधजानन्द

निराला जयन्ती

वीणावादिनी वर दे

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

वर दे वीणावादिनी वर दे

प्रिय स्वतन्त्र रव अमृतमन्त्र नव, भारत में भर दे ।।
काट अन्ध उर के बन्धन स्तर, बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर ।
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर, जगमग जग कर दे ।।
नव गति नव लय ताल छन्द नव, नवल कंठ नव जलद मन्द्र नव ।
नव नभ के नव विहगवृन्द को नव पर नव स्वर दे ।।

वीणा की झंकार

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

एक बार पुनः कर वीणा की झंकार ।
अज्ञानता मिटे जग से, बहालोक गंगाधार ।।
दुखित-पीड़ित की आह नशाये, कष्टग्रसित प्राणी हरषाये,
सबमें नई चेतना आये, जग में नव-ज्योति जल जाये ।
जड़-चेतन सब हेतु री माँ, बह जाये मलय बयार ।।
रणांगण को शत्रु छोड़ दे, सबमें स्नेह सम्बन्ध जोड़ दे ।
ईर्ष्या-द्वेष के बन्धन टूटे, देशभक्ति का भाव न छूटे ।
नवदिक् युवकों को देकर सौंप देश का भार ।।
राष्ट्रधर्म की धार बहा दो, देशप्रेम का प्यार पिला दो ।
भारत माँ के आन की रक्षा, दे गिरिराज शान की शिक्षा ।
इन वीणा के तारों में हो राष्ट्रभक्ति गुंजार ।।
मुक्तभाव हो, मुक्तछन्द हो, मुक्तसाधना कभी न बन्द हो ।
मुक्त गगन मन-विहग उड़ाओ, अजर पंख तन अमर बनाओ,
नव युग के नव गीतों में दे अपना स्वर गार ।।
एक बार पुनः कर वीणा की झंकार ।।

इस अबोध को लूट लिया

डॉ.ए.के.विश्वास, (छ.ग.)

आओ विवेक फिरसे आओ, मुझ अबोध को राह दिखाओ ।
अंधकारमय जीवन को, ब्रह्मज्ञान का बोध कराओ ।।
निज स्वार्थ छोड़ इस पृथ्वी का अपना प्रेम-प्रकाश दिया।
अंधविश्वास को तोड़कर शिवोऽहं का उद्घोष किया ।।
संन्यासी का गीत सिखाया, ज्ञान-भक्ति का बोध कराया ।
परमानन्द की राह दिखाकर, जन्म-मृत्यु को झुठलाया ।।
हे महाज्ञानी, हे महाध्यानी, भारत-माँ की अमर संतान ।
शिकागो में सुन तेरी वाणी, सबने तुझको किया प्रणाम ।।
जीवन संशय छूट गया, मोह-भरम सब टूट गया ।
तुमने अपनी शरण में लेकर, इस 'अबोध'को लूट लिया।।

वीर विवेकाननद

चन्द्रमोहन, टुण्डला

हृदयरक्त चढ़ा तुमने भारत माँ को अर्घ्य दिया ।
ज्ञानाग्नि जलाकर अन्तर में सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान दिया ।।
अखण्ड राज्य के ऋषि थे, अंश थे भोले शंकर के ।
रामकृष्ण के शिष्य बने, जो पूर्ण हुये थे तप करके ।।
क्या ईश्वर को देखा है, जब परमहंस से प्रश्न किया ।
तभी दयालु ठाकुर ने तुझे आत्मज्ञान प्रदान किया ।।
समाधिसुधा में डूबाकर, वट-वृक्ष बनाया था तुमको ।
शिव-भाव से जीव-सेवा का नूतन मन्त्र मिला जग को ।।
ठाकुर ने प्रेरित करके हनुमत सम सागर लँघवाया ।
धर्मसभा में शामिल हो, भारत का झण्डा लहराया ।।
शिकागो के भाषण से सबके मन को लुभाया ।
सनातन केसरी की दहाड़ ने सकल विश्व को चौंकाया ।।
राष्ट्रभक्ति का पाठ पढ़ा, गाँधी-सुभाष को प्रेरा था ।
इतिहास बदलने भारत का हर नेता को झकझोरा था ।।
वीर सपूत चिर नींद सो गया, जीवन भर सो न पाया था ।
ठाकुर की गोद में जाकर ही चिर शान्ति परम पद पाया था ।।

नर्मदा जयन्ती

नर्मदा जी की आरती

ओम जय जगदानन्दी, मैया जय आनंदकन्दी ।
ब्रह्मा हरिहर-शंकर, रेवा शिव हर शंकर रूद्री पालन्ती ।।
देवी नारद शारद तुम वर दायक, अभिनव पद चण्डी ।
सुर नर मुनि जन सेवत, शारद पदवन्ती ।।
देवी धूमक वाहन राजत वीणा वादयती ।
झुमकत-झुमकत-झुमकत, झननन झनन झनझन रमती राजन्ती ।।
देवी बाजत ताल मृदंगा सुरमण्डल रमती ।
तुडितान् तुडितान् तुडितान, तुरड़ड़ तुरड़ड़ तुरड़ड़ रमती सुरवन्ती ।।
देवी सकल भुवन पर आप विराजत निशदिन आनन्दी ।
गावत गंगा शंकर, सेवत रेवा शंकर तुम भव मेटन्ती ।।
मैयाजी को कंचन थाल विराजत अगर कपूर बाती ।
अमरकंठ में विराजत, घाटनघाट विराजत कोटि रतन ज्योति।।
मैयाजी की आरती निशदिन जो कोई जन गावे ।
भजत शिवानन्द स्वामी, रटत हरीहर स्वामी मनवांछित पावै ।।

पुस्तक समीक्षा

भगवान श्रीरामकृष्ण देव की अनुपम काव्य गाथा

'श्रीरामकृष्ण चरितमानस' खण्ड-४
लेखक - स्वामी रामतत्त्वानन्द
प्रकाशक - डॉ. ओमप्रकाश वर्मा,
सचिव, विवेकानन्द विद्यापीठ,
रामकृष्ण परमहंस नगर, कोटा,
रायपुर -४९२०१० (छत्तीसगढ़)
मूल्य- ७०/- रुपये, पृष्ठ-१५+२१६

श्रीरामकृष्ण की अद्वितीय काव्य गाथा 'श्रीरामकृष्ण-चरितमानस के तीन खण्डों से विवेक-ज्योति के पाठक परिचित हैं। अब आपके सम्मुख चतुर्थ खण्ड भी प्रस्तुत है। इस ग्रन्थ का श्रीगणेश रामकृष्ण संघ के संघाध्यक्ष परम पूज्य स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज के शुभाशीर्वचन से होता है। दूसरे कई पूज्य संघ के वरिष्ठ सन्तों के शुभाशीर्वचन के बाद 'श्रीरामकृष्णशलाका-प्रश्नावली' तथा अर्थ सहित श्रीरामकृष्णदेव की आरती है। तत्पश्चात् श्रीरामकृष्ण के लीला-सहचरों की कुछ घटनायें और ठाकुर के उपदेशों का दोहे, चौपाई और छन्दों में पद्यानुवाद है। श्रीरामकृष्णचरित-मानस भगवान श्रीरामकृष्ण के भक्तों की आन्तरिक श्रद्धा को वर्धित करनेवाला और हृदय में भक्तिरसामृत की सरिता प्रवाहित करनेवाला है। सन्त कवि स्वामी रामतत्त्वानन्द जी भगवान से हृदय से व्याकुल होकर प्रार्थना करते हैं –

तव गाथा तव चरित प्रभु, तव लीला तव बात।
एक विनय तव चरण में, सुमिरवँ दिन अरू रात।।

– हे प्रभु ! आपके चरण कमलों में मेरी एक ही प्रार्थना है कि मैं आपके पावन चरित्र, आपकी वाणी और आपकी दिव्य लीलाओं का दिन-रात गायन करता रहूँ।

इसलिये उन्होंने विभिन्न छन्दों में इसकी रचना की। एक स्थान पर कीर्तन का महत्व समझाते हुये लिखते हैं –

पाप पंक्षी तन डाल पर, वास करत मंडराय।
करतहि कीर्तन नाम गुण सकल पक्षी उड़ जाय।।

९ मार्च, १८८३ को मणि और राखाल बैठे हुये हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण उन्हें निष्काम कर्म की महिमा समझाते हुये कहते हैं –

जब जीव करहि करम निष्कामा।
धुल धुल मल हिय होहि अकामा।।
तब प्रगटहि हिय पूरन कामा।
अन्त समय पावहि हरि नामा।।
करत करत निष्काम करम मन मल जब धुल जाहिं।
तब प्रगटहिं भगवान हिय, भव बन्धन कट जाहिं।।

विवेक की महिमा को समझाते हुये श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं –

ईश्वर ही बस नित्य हैं, शाश्वत सत्य अनन्त।
बाकी जग अनित्य है, पावत इक दिन अन्त।।
असत जगत सत एक प्रभु, जाकर अस मति एक।
तज तज असत हि भजत सत अस मति जान विवेक।।
काम क्रोध मद लोभ नहि, जाकर मन महँ एक।
निरमल मन अस पावहि, दरस परस विवेक।।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव की असीम कृपा का स्मरण कर संन्यासी कवि रामतत्त्वानन्द जी लिखते हैं –

किरपा बरषाहीं, घर घर जाहीं, को अस दीनदयाला।
तुम सम तुम नाथा, हे जगनाथा जय जय खुदीवर लाला।।
जा जा भक्तन घर, जल पी-पीकर पलटेउ भाग्य तिहारा।
केवल किरपा बल, नहिं जप-तप फल सागर पार उतारा।।

सहज मुक्ति का उपाय बतलाते हुये कहते हैं –

सतसंगत हरिनाम गुण, प्रभु पद शरण अपार।
जे करहीं ते सहज अति उतरहि सागर पार।।

एक दिन लाटू, मणि , राखाल, डाक्टर आदि श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हुये हैं। श्रीरामकृष्ण देव उन्हें ईश्वर-दर्शन का सुख और उसकी प्राप्ति का सहज उपाय बताने लगे –

जो चाहत सोई सुख पियारा।
व्याकुल मन तेहि लेहु पुकारा।।
विरह अगिनि भभकहि हिय माहीं।
सकल वासना जब जल जाहीं।।
तब प्रभु प्रकटहि हिय मँह ताता।
पावहु सोई सुख दिन अरु राता।।

संन्यासी भक्त-कवि समस्त भक्तों को यह सान्त्वना देते हैं –

हो अति सरल पुकार ले, रामकृष्ण भगवान।
हिय प्रगटहि धरि धीर मन, देहि भगति अरु ज्ञान।।

इस प्रकार साधन, साधना और अनुभूतिमक सत्संग से पूर्ण यह दिव्य गाथा है। मैं रचनाकार स्वामी रामतत्त्वानन्द जी महाराज के चरणों में प्रणाम करता हूँ और जल्दी इसका अर्थसहित संस्करण प्रकाशित करने का निवेदन करता हूँ। ऐसे उत्कृष्ट ग्रन्थ के प्रकाशक डॉ ओमप्रकाश वर्मा जी को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ। यह ग्रन्थ सबमें भक्तिवर्धन कर ईश्वर-दर्शन में सहायक बने, यही अभिलाषा करता हूँ। जय श्रीरामकृष्ण !!! ○○○ **– स्वामी प्रपत्त्यानन्द**

विवेकानन्द रथ का छत्तीसगढ़ प्रवास

एक रथ-यात्री की डायरी से

२५ जनवरी, २०१३, शाम ४ बजे शदाणी दरबार, रायपुर में स्वामीजी के रथ का स्वागत

रायपुर स्वामी विवेकानन्द जी की किशोरावस्था की लीलाभूमि है। यहाँ वे दो वर्षों तक निवास किये थे। रायपुर की सीमा में प्रवेश करते ही सबसे पहले शदाणी संतों का प्रसिद्ध तीर्थस्थल शदाणी दरबार में रथ का सुन्दर स्वागत किया गया। शदाणी दरबार के अध्यक्ष और प्रसिद्ध सन्त श्री युधिष्ठिर लाल जी ने स्वामी विवेकानन्द जी की दिव्य मूर्ति पर माला पहनाकर और पुष्प अर्पित कर स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। उसके बाद अन्य लोगों ने पुष्प-माल्यार्पण किये। तदनन्तर आश्रम परिदर्शन के बाद वहाँ के मुख्य मन्दिर में सभा आयोजित की गयी। सभा में स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वहाँ के महन्त श्री युधिष्ठिर लाल जी ने अपने विचार व्यक्त किये। काफी संख्या में शदाणी भक्त उपस्थित थे। वहाँ से शाम ६ बजे शहर-भ्रमण करते हुये रथ रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में लगभग ७.३० बजे पहुँचा। वहाँ आश्रम में संन्यासियों, भक्तों और छात्रावास के बच्चों ने स्वामीजी का स्वागत किया। आश्रम में रथ का रात्रि-विश्राम हुआ।

२६ जनवरी, २०१४, रविशंकर विश्वविद्यालय

रायपुर में प्रात: ९ बजे स्वामीजी के रथ का भव्य स्वागत किया गया। वहाँ के कुलपति श्री एस. के. पाण्डेय जी, कुलसचिव श्री के. के. चन्द्राकर जी ने अपने विश्वविद्यालय परिवार के साथ स्वामीजी की मूर्ति पर माल्यार्पण किया तथा विश्वविद्यालय के प्रेक्षाभवन में सभा हुयी। हॉल नीचे-ऊपर और बाहर भी छात्र-छात्राओं से भरा था। सभा में स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, कुलपति जी आदि सबने व्याख्यान दिये। विश्वविद्यालय की व्यवस्था वहाँ के प्रोफेसर श्री बी. एल. सोनकर, नीता वाजपेयी आदि ने की थी। कार्यक्रम चलता रहा और रथ दिशा कॉलेज, कोटा के लिये प्रस्थान किया।

दिशा कॉलेज, कोटा, रायपुर में **१०.३० बजे** रथ पहुँचा। वहाँ के प्राचार्य श्री अनिल तिवारी जी ने अपने कॉलेज के छात्र-छात्राओं और सहयोगियों के साथ रथ का भव्य स्वागत किया। वहाँ बच्चों का पुरस्कार वितरण स्वामी प्रपत्त्यानन्द और अन्य मंचस्थ अतिथियों के कर-कमलों से हुआ। तत्पश्चात् स्वामीजी ने स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों से छात्रों को अवगत कराया। सभा १२.३० बजे सम्पन्न हुयी।

सन्ध्या ५.०० से ८.३० तक रायपुर शहर-भ्रमण

शाम को शहर-भ्रमण की योजना थी। स्वामी विवेकानन्द जी अपनी किशोरावस्था के दो वर्ष रायपुर में बिताये थे। इसलिये स्वामीजी को रायपुर शहर का परिदर्शन कराना था। स्वामीजी इस भूमि के विकास को देखें और लोग स्वामीजी के भव्य व्यक्तित्व को देखकर धन्य हों ऐसी भावना थी। आश्रम से पाँच गाड़ियों के बीच में स्वामीजी का रथ सम्पूर्ण गौरव के साथ मन्थर गति से दर्शकों को आनन्द प्रदान करते हुये चला जा रहा था। आगे-आगे १० मोटर साइकिलों पर सवार युवक स्वामीजी और भारत माता के नारे लगाते हुये स्वामीजी की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुये मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। स्वामीजी के रथ में उठो जागो और राष्ट्रभक्ति के गीत बज रहे थे। कुल मिला कर बड़ा मनोहर और भव्य शोभायात्रा थी। एकबार जो देखता था, वह देखता ही रह जाता था। रथ विवेकानन्द आश्रम से आजाद चौक, तात्यापारा, विवेकानन्द सरोवर, राजभवन, गौरव पथ, तेलीबाँध, शंकर नगर, रेलवे स्टेशन, चौबे कॉलोनी, राजकुमार कॉलेज होते हुये पुन: आश्रम पहुँच गया। लगभग ३५-४० किलो मीटर का भ्रमण हुआ, जिसमें लगभग ७०,००० लोगों ने स्वामीजी के दर्शन किये।

रथ की झाँकी : जो देखा वह देखता ही रह गया !

रात में प्रकाश जलने पर रथ और उसमें विद्यमान स्वामी विवेकानन्द जी की दिव्य शोभा देखते ही बनती थी। जिस रास्ते से रथ गुजरता था, लोग उसे देखते ही रह जाते थे। दिन या रात किसी भी समय रथ का मार्ग से गुजरना लोगों में कौतुहल और आनन्द का वर्धन कर उन्हें आश्चर्यचकित कर देता था। लेकिन रात में रथ की शोभा, आकर्षण कई गुने बढ़ जाता था। रास्ते में जा रहे स्वामीजी के रथ को देखकर एक-दूसरे को पुकार कर लोग दिखाते थे। कोई महिला अपने घर में देखकर चिलाते हुये लोगों को बुलाकर दिखाती थी। ग्रामीण बच्चे देखकर मुस्कुराते हुये एक-दूसरे को दिखाते थे। लोग अपनी दुकान, अपना घर, नारियाँ अपना काम, मजदूर अपना कार्य और स्कूल के बच्चे क्लास छोड़कर बाहर आकर स्वामीजी को विस्मित नेत्रों से स्वयं देखते और दिखाते थे। ऐसी भव्य थी स्वामी विवेकानन्द जी की रथस्थ मूर्ति !

माँ सारदा कुटीर, वृन्दावन में भक्त-सम्मेलन

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन के तत्त्वावधान में माँ सारदा कुटीर (कला बाबू कुंज) में १२ सितम्बर, २०१४ को द्वितीय वार्षिकोत्सव मनाया गया। इस उपलक्ष्य में माँ सारदा कुटीर में विशेष पूजा, हवन और भजन हुआ। भक्त-शिविर में अन्य स्थानों से लगभग २०० भक्त और १५० स्थानीय लोगों ने भाग लिया। सबको दोपहर का प्रसाद दिया गया और शाम की आरती और भजन के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

१४ सितम्बर को आश्रम द्वारा १०० विधवाओं को खाना बनाने का समान गैस स्टोव आदि और १५० विधवाओं को १ महीना खाने का कच्चा राशन दिया गया।

महासचिव महाराज ने किया छात्रावास का उद्घाटन

रामकृष्ण मिशन हातामुनिगुड़ा, उड़िसा में २३ सितम्बर, २०१४ को रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने वरिष्ठ बच्चों के छात्रावास का उद्घाटन किया। उन्होंने भोकेशनल ट्रेनिंग सेन्टर की नींव भी रखी। इस अवसर स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, स्वामी व्याप्तानन्द जी एवं अन्य कई आश्रमों के संन्यासी वृन्द उपस्थित थे।

स्वच्छ भारत अभियान

छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्री श्री रमन सिंह जी ने रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज को नवरत्न से सम्मानित किया। छत्तीसगढ़ में होनेवाली 'स्वच्छ भारत क्रान्ति' में राज्यस्तरीय नौ लोगों की टीम के महाराजजी ब्रांड एम्बेस्डर प्रमुख मार्ग-दर्शक होंगे।

वरिष्ठ नागरिक दिवस मनाया गया

विवेकानन्द विद्या निकेतन, अम्बिकापुर में १ अक्टूबर, २०१४ को वरिष्ठ नागरिक दिवस का आयोजन किया गया। स्तोत्र-पाठ से कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। आश्रम के सचिव स्वामी तन्मनयानन्द जी ने वरिष्ठ नागरिकों का परिचय दिया। विद्यालय के प्राचार्य श्री वी. एन. शर्मा जी, आश्रम के अध्यक्ष श्री रतन चाकी जी और श्री व्रजेश दूबे जी ने श्रीफल, साल एवं पुष्पगुच्छ से आये हुये वरिष्ठ नागरिकों – श्री बी.पी. कश्यप, श्री बिपिन बिहारी मन्दिलवार, श्री एम.पी. सिन्हा और श्री एस.के.पी. वर्मा जी को सम्मान्ति किया।

छात्र-छात्राओं के मार्गदर्शन शिविर में विधायक जी

विवेकानन्द विद्या निकेतन, अम्बिकापुर में विद्यार्थियों के मार्गदर्शन हेतु आयोजित शिविर में शहर के गणमान्य नागरिक एवं सरगुजा के विधायक श्री टी.एस. सिंहदेव जी ने अपना महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया। उन्होंने छात्र-छात्राओं के प्रश्नों के उत्तर भी दिये। उन्होंने छात्रों से कहा कि सरगुजा में शिक्षा को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षक अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करें। साथ ही छात्रों का भी कर्तव्य है कि वे संस्कारी बनें और उनका जीवन आध्यात्मिक संस्कार से पूर्ण हो।

विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी में स्वामी सर्वभूतानन्दजी

रामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, बिलासपुर द्वारा संचालित विवेकानन्द विद्यानिकेतन में ७ अक्टूबर, २०१४ को रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के अध्यक्ष रामकृष्ण मठ और मिशन के न्यासी स्वामी सर्वभूतानन्द जी ने बच्चों को सम्बोधित किया। उन्होंने बच्चों को खरगोश और कछुए की तीन अलग-अलग-कहानियाँ सुनाकर पशुओं से भी शिक्षा लेने को कहा। विद्यार्थियों को सन्मार्ग पर चलने और नैतिक शिक्षा को अपनाने की बात कही। इस अवसर पर आश्रम के सचिव श्री सतीश द्विवेदी और विद्यापीठ के निदेशक श्री सुरेश चन्द्राकर एवं समस्त विद्यालय परिवार उपस्थित था।

मासिक सत्संग में श्रीराम के जीवन पर व्याख्यान

श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवा आश्रम, अम्बिकापुर के मन्दिर में सितम्बर के मासिक सत्संग में आश्रम के सचिव स्वामी तन्मयानन्द जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के जीवन पर प्रकाश डालते हुये कहा कि यदि हम श्रीराम के गुणों पर चिन्तन-मनन करें, तो धीरे-धीरे श्रवण-मनन से वे गुण हमारे अन्दर आ जायेंगे। OOO